जनवरी-दिसंबर 2014 वर्ष-46 अंक-1-4

प्रतियोगिता विशेषांक

मूल्य ₹20

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

गूगल से साभार

स्वदेश निर्मित नाभिकीय पनडुब्बी अरिहंत

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2015

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2015 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों/ फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है। अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्दों में) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2015

पुरस्कार	
प्रथम	- 2000/रु.
द्वितीय	- 1500/रु.
तृतीय	- 1000/रु.
प्रोत्साहन	- 500/रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं इतर हिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/-रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेषः पुरस्कृत रचनाएं 'वैज्ञानिक' की संपत्ति होगी। 'वैज्ञानिक' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा। ईमेल से भेजी गयी प्रविष्टियां प्रशंसनीय होंगी।

प्रविष्टियां भेजने का पता

– श्री विपुल सेन -

प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक, 'वैज्ञानिक'
वैज्ञानिक अधिकारी, ई.डी. एण्ड सी.डी., पी. पी. परिसर,
भा.प.अ.केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई- 400085,
फोनः 022 25591154
vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com

रचनाएं आमंत्रित

'वैज्ञानिक' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये.
- लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा पठनीय हो, साथ ही साथ भाषा सरल, बोधगम्य और रूचकर हो.
- नव लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए युवा एवं नव लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा उन्हें वरीयता प्रदान की जायेगी.
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें.
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हासिया छोड़ कर कागज के एक ओर ही लिखें.
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें.
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी.
- पत्रिका को अधिकाधिक रूचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप सभी सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत है.
- पत्रिका में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक की कम से कम एक प्रति अवश्य भेजी जानी चाहिये.

"रचनाएं भेजने का पता"

श्री प्रमोद व.भागवत

कक्ष संख्या 2/106 एस. मॉई लॅब,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400085
pramodvb@barc.gov.in

वैज्ञानिक

वर्ष - 46 अंक - 1–4

जनवरी- दिसंबर 2014

मुख्य सम्पादक
श्री. प्रमोद वसंत भागवत

सहयोगी सम्पादक
श्री विपुल सेन

सम्पादन मंडल
डॉ.कुलवंत सिंह
श्री.मनीष कुमार
श्री.सत्यवान बंसल
श्री.कवींद्र पाठक

मुख्य व्यवस्थापक
श्री.विपुल सेन

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦
श्री पी.एम.गांधी
श्री डी.एन.सिंह
श्री संजय गोस्वामी
श्री. अनिल अहिरवार
श्री. मुकेश गोयल

सदस्यता शुल्क आजीवन

व्यक्तिगत : 400
संस्थागत : 1000

भुगतान हेतु स्टेट बैंक आफ इंडिया खाता संख्या : 34185847362 IFCS code : SBIN: 0001268
कृते : 'वैज्ञानिक, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद'
Pay to : Vaigyanik, Hindi Vigyan Sahitya Parishad
कृपया सदस्यता हेतु ई-भुगतान की रसीद अथवा चेक भुगतान अपने पूरे पते के साथ व्यवस्थापक के पते पर भेजें।

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

अनुक्रमणिका

संपादकीय - 4

लेख

1. **डेंग्यू-एक व्यापक सर्वहारा व्याधि**
   राम प्रताप तिवारी - 5
2. **क्या आप जानते हैं कि आप थैलेसेमिया के वाहक हो सकते हैं?**
   डॉ.अजित गोरक्षकर,
   कला अजित देसाई-गोरक्षकर - 19
3. **एन्टीबायोटिक्स का विकल्प-बेक्टीरियोफेज**
   डा.सविता गुप्ता - 25
4. **तकनीक बदलती अन्नदाता की तकदीर**
   मनीष श्रीवास्तव - 34
5. **ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत**
   डॉ.दयाशंकर त्रिपाठी - 39
6. **पशुओं में कैंसर : एक विहंगम दृष्टि**
   डॉ.रमेश सोमवंशी - 44
7. **भारत में नवोन्मेष**
   मनीष मोहन गोरे - 53
8. **गुटका एक मौत (कविता)**
   विपुल सेन - 56
9. **हमारा स्वास्थ्य और मसालों में व्याप्त प्राकृतिक रसायनों का विज्ञान**
   प्रोफेसर (डॉ) सुशीला राय - 57
10. **एक अदम्य साहसी वैज्ञानिक कल्पना चावला की जीवनी**
    हरिश चन्द्र चौबीसा - 68
11. **भारतीय पशुधन पर मंडराते सीमापार पशुरोगों के खतरे**
    डा.रमेश सोमवंशी - 74
12. **वैज्ञानिकों ने नई एंटीबायोटिक दवाओं का 'खोज इंजन' बनाया**
    पूनम - 80
13. **वर्ग पहेली**
    विपुल लखनवी - 82

संपादकीय

निरंतरता का वादा

पिछले कुछ वर्षों से कुछ कारणों से आपकी पत्रिका 'वैज्ञानिक' के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है, जिसके लिये हम खेद व्यक्त करते हैं और आपको विश्वास दिलाता हैं कि भविष्य में शायद विलम्ब न हों. इसके कुछ कारण आपको बता दें कि आज हिन्दी की वैज्ञानिक पत्रिकाओं में उत्कृष्ट लेखों का अभाव सा प्रतीत होता है. अच्छे लेख की प्रतीक्षा में समय निकल जाता है. दूसरे इस पत्रिका से जुड़े सभी अधिकारी व कर्मचारी अपने काम के अतिरिक्त समय में सेवा प्रदान करते हैं. खैर जो भी हो. इतनी सब बाधायें होते हुये भी अति उत्साही राजभाषा प्रेमी इसके प्रकाशन हेतु समय निकालते हैं. अतः वे सभी बधाई के पात्र तो हैं ही.

वैसे यह अंक डॉ होमी भाभा लेख प्रतियोगिता वर्ष 2012- 2013 में प्राप्त कुछ लेखों का समावेश लिये हुए है, जिसमें आपको कई जानकारियां प्राप्त होगीं, ऐसी मेरी आशा है. जहां डेग्यू रोग लगभग हर वर्ष भारत में दस्तक देता है वहीं थैलिसेमिया की जानकारी बिल्कुल नई साबित होगी. आधुनिक युग में बैक्टीरिया पर बैक्टीरियोफाज के द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है. दूसरी तरफ खाद्यान की पैदावार भी बढ़ाने के उपाय बताये गये हैं. ग्रामीण भाईयों हेतु पशुओं के रोग और ई-खेती की बहुमूल्य जानकारी दी गई है. सीमा पार से किस तरह से पशुओं के रोग भारत में अस्थिरता फैला सकते हैं जिनसे हमें सावधान रहने की आवश्यक्ता भी है.

हमारे नित्य जीवन में काम आनेवाले घरेलू मसाले कितने उपयोगी हैं और स्वास्थ्यवर्धक हैं, यह जानकारी भी आपको मिलेगी. युवा वर्ग हेतु कल्पना चावला की जीवनी एक आदर्श उदाहरण सिद्ध हो सकती है.

इस अंक से हमने वर्ग पहेली भी आरम्भ की है. जिसके द्वारा वैज्ञानिक जानकारियों के अतिरिक्त राजभाषा हिन्दी की शब्दावली भी परखी जा सकती हैं. हम विजेताओं के नाम भी प्रकाशित करेंगे. साथ ही कुछ पुरस्कार भी देंगे. इस बार से हम सबसे अच्छे पत्र को जिसमें सत्य टिप्पणी होगी. उसका भी सम्मान करेंगे. आशा है पाठकों का सहयोग मिलता रहेगा.

आपके पत्र और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में.

- सम्पादक

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-२०१३ में प्रथम पुरस्कार प्राप्त लेख

डेंग्यू-एक व्यापक सर्वहारा व्याधि

राम प्रताप तिवारी
वैज्ञानिक (से.नि.), एच-3, बी-2 नीलकमल, प्रणामी मंदिर मार्ग,
सिलीगुड़ी (प.बंगाल), पिन-734 001. संपर्क - 095476-26633

21वीं शताब्दी में डेंग्यू एक व्यापक सर्वहारा व्याधि के रूप में प्रकट हुई है. यद्यपि इसका संज्ञान गत शताब्दी के उत्तरार्ध में ही हो चुका था तथापि इसका पूर्ण संज्ञान और निदान आज भी कष्टसाध्य ही माना जा रहा है. इसके उपचार प्रबंधन और नियंत्रण हेतु टीकौषधि का विकास, निर्माण अद्यतन संभव नहीं हो सका है. विषाणुजन्य प्रकृतिवाली इस घातक व्याधि का एकमात्र मोक्षदायक उपाय इसका नियंत्रण ही माना जा रहा है. वर्षा ऋतु के समय हमारे देश के अनेक भागों में इसका आक्रमण प्रतिवर्ष होता है. डेंग्यू के निदान तथा विषाणु, संक्रमण पर किये गये नवीनतम शोध

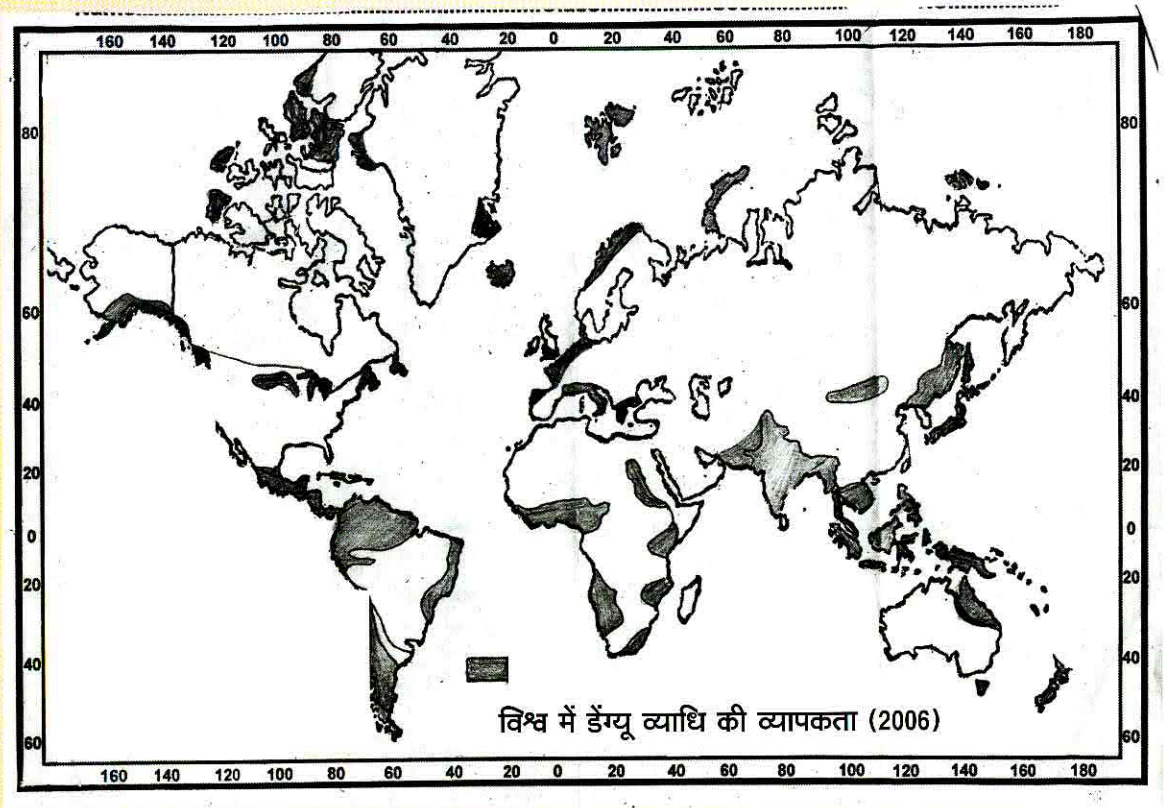

विश्व में डेंग्यू व्याधि की व्यापकता (2006)

परिणामों को प्रस्तुत लेख में व्यक्त किया जा रहा है.

चीन के चिकित्सा विश्वकोष में डेंग्यू व्याधि का उल्लेख विषप्रभावी व्याधि के रूप में किया गया है. इसका सर्वप्रथम संज्ञान जिन साम्राज्य काल (265-420 A.D.) में किया गया और इसे 'जलीय विष' के नाम से पुकारा गया जो कुछ उड़नेवाले जीवों से संबंधित माना गया. 15वीं शताब्दी में अफ्रीका महाद्वीप में व्याप्त इस दुर्दान्त व्याधि का संवाही कीट के रूप में ऐडिस प्रजाति के मच्छरों को माना गया था. इस व्याधि का प्रसार 1450-1900 A.D. के मध्य दास-व्यापार के वर्धित वैश्वीकरण के कारण अनेक देशों मे हुआ. 17वीं शताब्दी में इस व्याधि के उल्लेख कई देशों में प्राप्त हुए. 1779-82 के उपरांत एशिया, अमेरिका और कतिपय अन्य राज्यों में इस व्याधि की व्याप्तता प्रकट हो चुकी थी. वर्ष 1907 में यह व्याधि पीतज्वर के अतिरिक्त दूसरी सर्वहारा विषाणु जन्य व्याधि के रूप में विश्व में स्थापित हुई.

डेंग्यू व्याधि का आधिकारिक संज्ञान जॉन बर्टन क्लीलैण्ड तथा जोसेफ़ फ्रैंकलिन साइलर के शोधकार्य के द्वारा संभव हुआ. द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस व्याधि के प्रसार का कारण पर्यावरण परिवर्तन माना गया. युद्ध के फलस्वरूप इस व्याधि के विविध स्वरूपों का प्रसार अन्य देशों में हुआ. डेंग्यू के घातक स्वरूप DHF (डेंग्यू जन्य रक्ताघाती ज्वर) का उदय इसी समय में हुआ था. DHF का प्रथम संज्ञान 1953 में फिलीपीन्स में किया गया. वर्ष 1970 तक यह व्याधि शिशु मृत्यु का प्रमुख कारण मानी जा रही थी. अमेरिका तथा उपप्रशांत क्षेत्रों में भी इसका प्रसार हो चुका था. इस व्याधि के एक अन्य दानवीय स्वरूप - DSS (डेंग्यू जन्न संघातीय संकट) का संज्ञान मध्य तता दक्षिणी अमेरिकी देशों में हुआ. वर्ष 1980 में कुछ व्याधिग्रस्त व्यक्रियों में डेंग्यू विषाणु की अन्य उपजाति (DENV2) की उपस्थिति देखी गई. इन व्यक्तियों में कई वर्ष पूर्व भी डेंग्यू व्याधि की DENV1 उपजाति के विषाणु पाये गये थे.

भारतीय उपमहाद्वीप में डेंग्यू (डेंगू-डेंगी) व्याधि अनेक वर्षों से व्याप्त है. इसका मूल कारण तीव्र विषाणु संक्रमण है जो डेंगू विषाणु के 4 ज्ञात प्रतिरूपों में से कम से कम 1 कारक के द्वारा प्रकट होता है. इसके प्रतिरूप DENV1, DENV2, DENV3 तथा DENV4 होते हैं. व्याधि के दो प्रमुख रूप हैं - महामारीस्वरूप (Epidemic) और स्थानाधारित महाव्याधि (Endemic). महामारी स्वरूप की व्यापकता विस्तीर्ण क्षेत्रों में अधिसंख्य व्यक्तियों में देखी जाती है. स्थानाधारित व्याधि स्थान विशेष की अधिकांश जनसंख्या में प्रदर्शित होती है. महामारी स्वरूप अत्यंत विस्फोटक रूप में उदय होता है और वर्षाकाल में प्रायः प्रकट होता है. एशिया महाद्वीप के उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में डेंग्यू का स्थानाधारित स्वरूप भी प्रकट होता है. भारत, म्यांमार, बांग्लादेश, श्रीकांत, थाइलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया तथा फिलिपीन्स आदि देशों में महामारी के रूप में डेंग्यू व्याधि का संज्ञान हुआ है. भारत में 1986 में ही इसे दुर्दान्त व्याधि माना गया था (सारणी 1 देखें).

सारणी - 1 डेंग्यू व्याधि का भारत में प्रकोप

वर्ष	सकारात्मक रोगी	मृत्यु	पुनसंक्रमित रोगी
1985	18,720	11	1380
1986	21,799	16	1100
1990	30,800	25	2100
1995	40,910	40	2000
1998	50,110	58	1220
2002	57,000	65	1380
2006	75,620	80	1250
2010	63,510	70	1050
2012	81,570	110	1400

डेंग्यू स्पेनिश भाषा का शब्द है जो संभवतः स्वाहिली भाषा के शब्द 'डिंगा' का अपभ्रंश है. इसका प्रयोग एक मुहावरे में किया जाता है - 'का डिंगा पेपो' (Ka-dinga-pepo) अर्थात किसी दुष्ट आत्मा से उत्पन्न व्याधि. वेस्ट इंडीज के निवासी 'दास' वर्गीय व्यक्तियों में इस व्याधि के कारण डंडी के सदृश शरीर की आकृति (इस संदर्भ में गति व्यतिरेक के परिणामस्वरूप) हो जाने के कारण इस व्याधि को 'डंडी ज्वर' के नाम से जाना गया. 1790 में प्रख्यात चिकित्साविद बेंजामिन रश ने संयुक्त राज्य अमेरिका के फिलाडेल्फिया नगर में तीक्ष्ण अस्थिजन्य व्यथा अनुभव कर रहे एक रोगी में इस व्याधि के लक्षण प्रदर्शित होने के कारण इसे 'अस्थि विदारक ज्वर' की संज्ञा प्रदान की. आज भी इस नाम का प्रचलन कई देशों में हैं (Breakbone Fever) कुछ अन्य चिकित्साशास्त्रियों ने इसका नामकरण BRF (Bilious Remitting Fever) भी किया था. 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में डेंग्यू व्याधि के प्रचलित नामों में BHF (हृदय विदारक ज्वर Break Heart Fever) तथा 'ला डेंग्यू' (La Dengue) प्रमुख थे. व्याधि की गंभीर स्थिति को 'संक्रामक थ्राम्बोसायटिक पर प्यूरा' (Infectious Thrombocytic Purpura) भी कहा जाता था. स्थान विशेष के आधार पर इसे फिलीपीनी रक्ताघात ज्वर (Philippine haemorrhagic Fever), सिंगापुर,

चित्र-1 डेंग्यू व्याधि के संकट का प्राकट्य-निरूपण

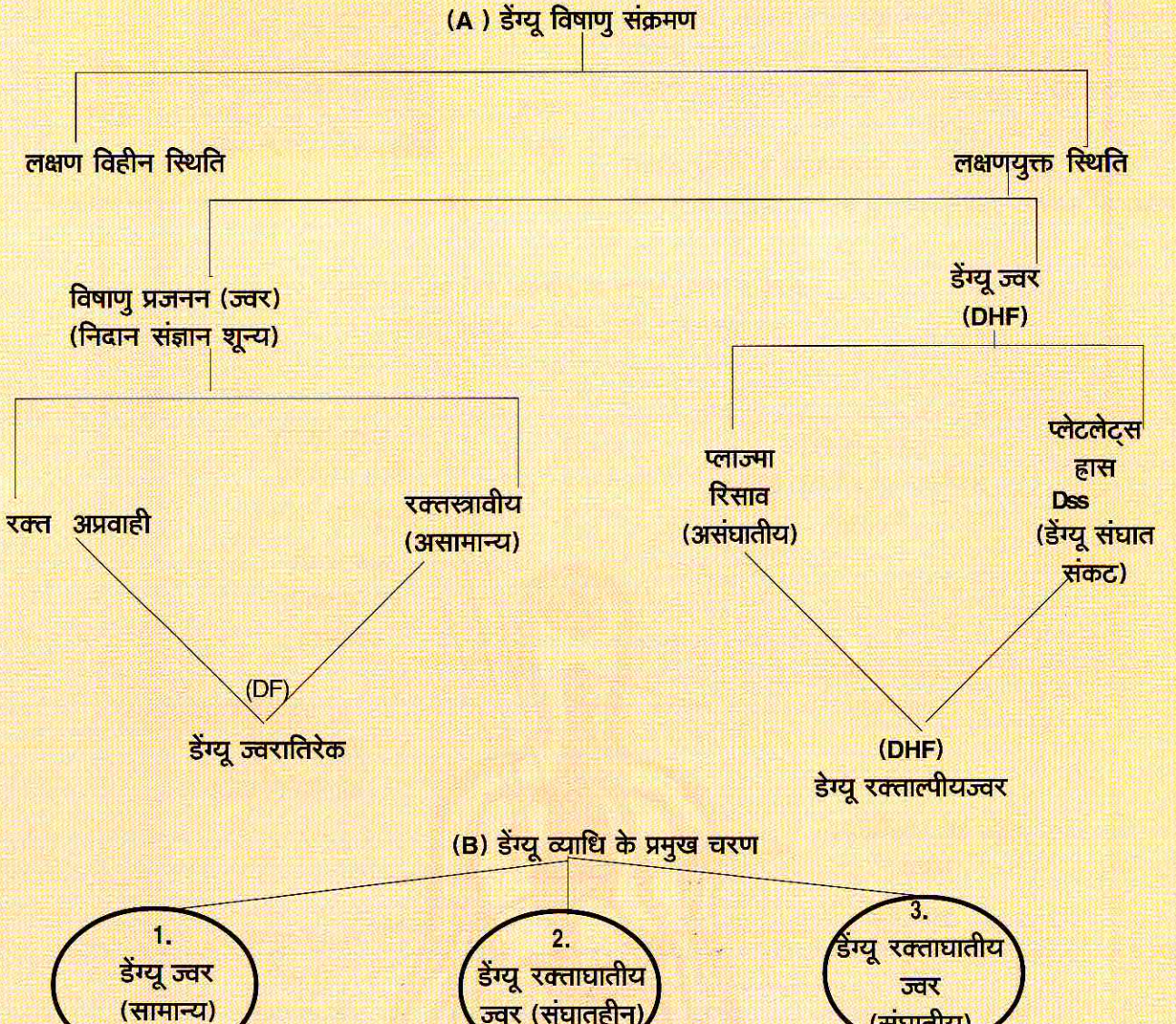

थाई रक्ताघाती ज्वर के नाम से भी जाना गया. वर्ष 1828 में सर्वप्रथम इसे 'डेंग्यू' व्याधि का नाम प्राप्त हुआ था.

डेंग्यू व्याधि के प्रमुख लक्षण

व्याधि की स्थिति में उत्कर्षीय ज्वर, शिरोशूल, तीक्ष्ण मांसपेशीय व्यथा, संधिशूल, विशिष्ट त्वचागत रैश, खसरा सदृश त्वचा वर्णातिरेक आदि प्रदर्शित होते हैं. कतिपय गंभीर संक्रमण ग्रस्त रोगी संकटाकीर्ण स्थिति में भी देखे गए हैं जो उपचार के अभाव में प्राणघाती हो सकती है. इन रोगियों में डेंगू रक्ताघाती ज्वर (DHF) या Dss (डेंग्यू संघातीय आपदा) प्रकट होने की संभावना रहती है.

डेंग्यू रक्ताघाती ज्वर (DHF) के परिणामस्वरूप अनवरत रक्तस्त्राव, प्लाज्मा रिसाव, प्लेटलेट्स न्यूनता भी प्रकट हो सकते हैं. शनैः शनैः प्रबंधन त्रुटि और उपचार अभाव की स्थिति में Dss (डेंग्यू संघाती संकट) उत्पन्न हो जाता है और निम्न रक्तदाब (Hypotension) की विषम स्थिति हो सकती है. (चित्र 1, 2 तथा 3 देखें).

शिशुओं और बालकों में सामान्यरूप से डेंग्यू व्याधि स्वरूप में प्रदर्शित होती है. स्वस्थ बालकों में इस व्याधि की

चित्र-2 डेंग्यू ज्वर में प्रदर्शित त्वचा की विकृत स्थिति (पिठ पर प्रदर्शित रैश)

चित्र-2 A मानवपोषी को संक्रमित करता ऐडिस मच्छर

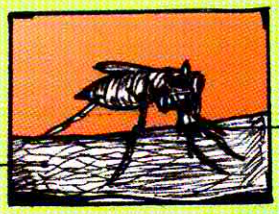

चित्र-3 मानव शरीर के विभिन्न तंत्रों को प्रभावित करनेवाले डेंग्यू ज्वर के प्रमुख लक्षण

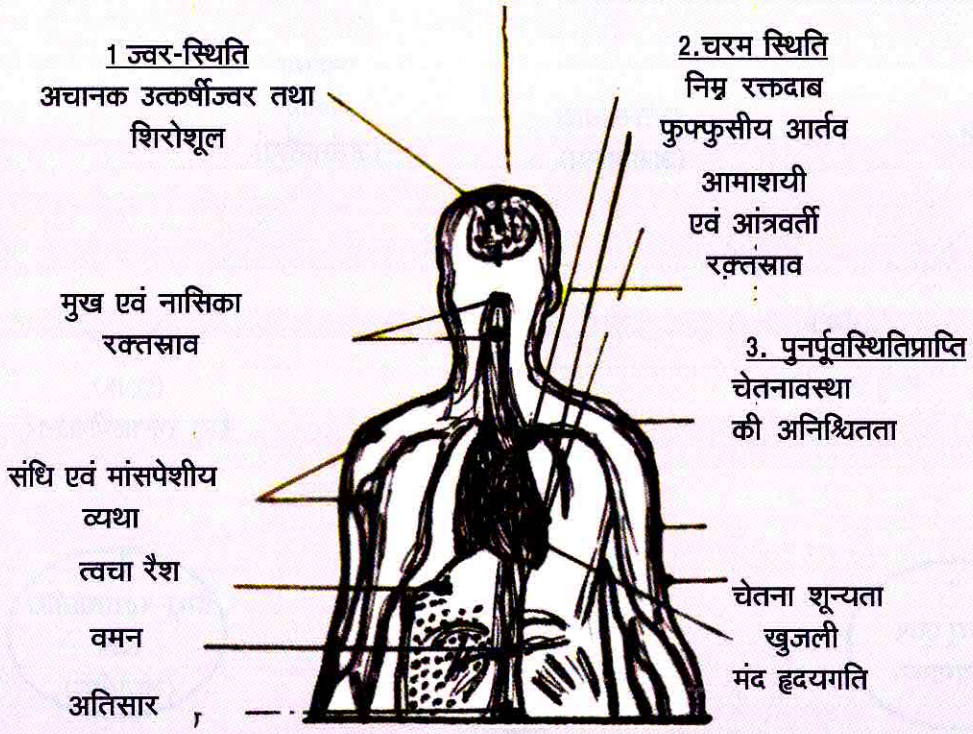

संभावना अधिक देखी जाती है. मधुमेह तथा श्वासरोग आक्रांत व्यक्तियों में डेंग्यू संक्रमण प्राणघाती हो सकता है. विषाणु के कुछ स्वरूपों और जैव रासायनिक जटिलताओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप दुष्परिणाम वृद्धि हो सकती है, यथा TNFα, MBL (Mannin Binding Lactin) प्रोटीनों के प्रकूटनकारी वंशाणुओं का सृजन, CTLAA, TGF-β, DC-SIGN, PLCE 1 तथा श्वेत रक्त कणिका (WBC) प्रतिजनों के कुछ विशिष्ट स्वरूपों की उत्पत्ति, HLA-β विषाणु की बहुरूपता इत्यादि. अफ्रीका के निवासियों में एक प्रकार की विषाणु असामान्यता (ग्लूकोज-6 फास्फेट डिहाइड्रोजिनेज की कमी) संकटाकीर्ण स्थिति की जनक होती है. यद्यपि विटामिन डी संग्राहक तथा FcyR के हेतु उत्तरदायी वंशाणु-बहुरूपता अनुवर्ती डेंग्यू संक्रमण से सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हुई है तथापि डेंग्यू विषाणु संक्रमण सभी आयुवर्गीय पुरुषों और महिलाओं में समान रूप से देखा गया है.

लक्षणों का प्राकट्य संक्रमण के 3-10 दिनों में ही होता है. प्रारंभ में अचानक कंपकंपी के साथ तीव्र ज्वर तथा तीक्ष्ण शिरोशूल प्रदर्शित होता है. कुछ समय के उपरान्त तीव्र संधि व्यथा, मांस पेशीय शूल और गति विषयक असमर्थता का उदय होने लगता है. ज्वर की स्थिति 5-7 दिनों तक रह सकती है. अधिकांश रोगियों में दुर्बलता के अतिरिक्त पुनः सामान्य स्थिति प्राप्त होने लगती है.

DHF डेंग्यू की गंभीर अवस्था होती है जो डेंग्यू विषाणु के एक या अधिक स्वरूपों के संक्रमण से प्रकट हो सकती है. प्रारंभिक अवस्था में संवेदीय परिणाम उत्पन्न होती है और बाद में प्रतिरोधीय आपातस्थिति की उत्पत्ति होती है. यह विशेष रूप से 2-15 वर्ष की आयु के बालकों में अधिक देखी गई है. 14 फीसदी के लगभग व्याधिग्रस्त व्यक्तियों की मृत्यु भी प्रदर्शित हुई है. प्रारंभिक ज्वर उत्कर्षी (37°c - 40°c) होता है, निरंतर बना रहता है. 48 घंटे-60 घंटों के बाद कमी आती है. मसूड़ों से रक्तस्राव, नासिका रक्तस्राव और यकृति वृद्धि भी हो सकती है. थ्राम्बोसायटोपीनिया (रक्ताल्पता) प्रदर्शित होती है. उग्रतर स्थिति में रक्तसघनता (Haematocrit) की स्थिति आ जाती है.

DSS - डेंग्यू की एक गंभीर परिणति होती है. DHF के समस्त लक्षणों के अतिरिक्त संघात (Shock) भी प्रदर्शित होता है. तीव्र गति से नाड़ी चलना, निम्न रक्तदाब (20mm.Hg से कम) व्याकुलता, त्वचा शीतल होना, चर्म संकुचन भी प्रदर्शित होता है. (चित्र 1 एवं तालिका 1 देखें)

व्याधि प्रसार

डेंग्यू व्याधि के मुख्य संवाहक मच्छरों की प्रजातियां होती हैं. ऐडिस प्रजाति के मच्छर सामान्य रूप से 35° उत्तरी से 35° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य स्थित क्षेत्रों में 1000 मीटर (3300 फीट) की ऊंचाई तक पाये जाते हैं, इस व्याधि के प्रमुख संवाहक माने जाते हैं. ये दिन के समय प्रातः 5 से 8 बजे तक और सायंकाल 4 से 7 बजे तक सक्रिय रहते हैं. वर्ष के सभी महीनों में और अपवाद स्वरूप रात्रि में भी सक्रिय देखे गये हैं. ऐडिस प्रजाति के मच्छरों की अनेक उपजातियां Aedes acgupti, A.alpictus, A.polynesiensis, A.scutellaris भी डेंग्यू व्याधि के प्रसार हेतु सक्षम पाई गई हैं. संक्रमण के स्रोत मनुष्य और मच्छर दोनों ही होते हैं. यद्यपि मनुष्य ही इस व्याधि के चयनित पोषी सिद्ध हुये हैं तथापि अन्य स्तनधारी प्राणी भी इस व्याधि के प्रसारक हो सकते हैं. इस व्याधि के प्रसार चक्र में कोई तीसरा सदस्य नहीं होता है. जब कोई Aedes मच्छर किसी डेंग्यूग्रस्त व्यक्ति को काटता है तो 3-10 दिनों से व्याधिग्रस्त है, जो मच्छर का पाचनतंत्र डेंग्यू विषाणु से संक्रमित हो जाता है. 8-10 दिनों के उपरांत विषाणु अन्य ऊतकों में भी व्याप्त होकर लार ग्रंथियों में पहुंच जाता है. मच्छर की लार में इनकी प्रचुर मात्रा होती है. मच्छर के शरीर पर इनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है और वे जीवनपर्यंत संक्रमिक रहते हैं. मनुष्य के शरीर में मच्छर के काटने से ये रक्त में प्रवेश कर जाते हैं और प्रतिजनीय प्रभाव उत्पन्न होने लगता है.

ऐडिस प्रजाति के मच्छर मनुष्यों के आवास के आस-पास कृत्रिम जल संग्राही पात्रों, अन्य वस्तुओं में एकत्र जलीय स्थानों में प्रजनन करते हैं. ये मनुष्य के अतिरिक्त अन्य किसी मेरुदण्डधारी प्राणी को नहीं काटते हैं. डेंग्यू विषाणु संक्रमण संक्रमित रक्त-उत्पादों, रक्त प्रतिस्थापन तथा मानव अंग-प्रत्यारोपण के द्वारा भी हो सकता है. सिंगापुर जैसे इस व्याधि के महामारी ग्रस्त देश में प्रति 10,000 रक्त प्रतिस्थापन व्यक्तियों में 1-6 रोगी संक्रमित देखे गए हैं. संतान-प्रसार (माता से संतान में) की संभावना गर्भावस्था में होती है. मनुष्य से मनुष्य में इस व्याधि के प्रसार की संभावना नहीं होती है. डेंग्यू विषाणु का वंशाणु संबंधी प्रकारांतर क्षेत्राधारित प्रदर्शित हुआ है. एक ही क्षेत्र में दूसरे प्रकार के डेंग्यू विषाणु की व्यापकता अपवाद मानी जाती है तथापि कतिपय स्थानों पर इस प्रकार की व्यापकता प्रदर्शित हो रही है.

संक्रमण क्रिया

डेंग्यू के विषाणु मानव शरीर में रक्त में प्रवेश करने के उपरांत तत्काल श्वेत रक्त कणिकाओं (WBC) से संबद्ध होने लगते हैं और प्रजनन करने लगते हैं. कणिकायें शरीर में रक्त संचार द्वारा भ्रमण करती रहती है. विषाणु प्रजनन के प्रत्युत्तर स्वरूप अनेक संकेतक प्रोटीनों (Cytokines

Interferons) का उत्पादन प्रारंभ हो जाता है जो डेग्यू व्याधि के लक्षणों के प्राकट्य के लिए उत्तरदायी होती हैं. सामान्यतः ज्वर का उत्कर्ष, फ्लू सदृश लक्षण तथा तीक्ष्ण मांसपेशीय व्यथा इसका प्रतिफल होता है. प्रबंधन के अभाव में शरीर के अन्य अंग यकृत, अस्थिमज्जा आदि भी प्रभावित हो जाते हैं.रक्त वाहिनियों की कोशिकायें भी प्रवेश्यता के प्रभाव से भित्तिभ्रंश प्रकट होने के कारण रक्त स्राव और अंतः रिसाव को उत्पन्न करने लगती है. शरीर गुहा में रक्तस्राव और सीरम आर्तव प्रदर्शित होना प्रारंभ हो जाता है. इस रिसाव, स्राव के फलस्वरूप वाहिनियों में रक्त अपर्याप्त मात्रा में प्रवाहित हो पाता है और रक्त दाब का अपकर्ष होने लगता है. अपकर्ष चरमस्थिति में कई महत्वपूर्ण अंगों को रक्तापूर्ति बाधित कर देता है और गंभीर जटिलतायें उत्पन्न होने का संकट प्रकट हो जाता है. (तालिका 1 तथा चित्र 4 देखें)

अस्थिमज्जा के संक्रमित होने के कारण स्ट्रोमल कोशिकायें निष्क्रिय होने लगती हैं और प्लेट लेट्स की संख्या में कमी प्रारंभ हों जाती है. प्लेटलेट्स प्रभावी रूप से रक्त के थक्का जमने के लिए आवश्यक होती हैं. इनकी कमी होने पर रक्तस्राव बंद नहीं होता है. डेंगू व्याधि की द्वितीय जटिलता रक्तस्राव मानी जाती है. डेंग्यू व्याधि की आपातकालीन (DHF तथा DSS) स्थितियों के लिए मात्र डेंग्यू विषाणु की अन्यान्य उपजाति का संक्रमण ही उत्तरदायी नहीं है अपितु सर्वमान्य अवधारणा के अनुसार ADE (Antibody Dependent Enhancement) प्रतिकायाधारित विवर्द्धन भी प्रमुख कारक होता है. ADE की कार्य विद्या अद्यतन शोध का विषय है.

एक अन्य वैज्ञानिक शोध के अनुसार अनिसर्गी प्रतिकार्यों की अपूर्ण संबद्धता तथा श्वेत रक्त कणिकाओं के अनुपयुक्त अवयवों में उनका प्रतिस्थापन भी जटिलताओं का कारण हो सकता है. इन श्वेत रक्त कणिकाओं के द्वारा विषाणुओं के विनाश हेतु उन प्रतिकायों का अंतर्ग्रहण कर लिया जाता है. कतिपय विषाणु वैज्ञानिकों की दृष्टि में T- कोशिकाओं के योगदान के अतिरिक्त साइटोकाइंस, संपूरक तंत्र की भूमिका भी इसका मूल कारण हो सकता है. व्याधि की गंभीरता के संकेत कोशिकीय प्रवेश्यता वृद्धि एवं रक्त थक्का जमने में अवरोध के द्वारा प्राप्त होते हैं. इसके अतिरिक्त एण्डोटिलियला ग्लायकोलिसिस की असामान्य स्थिति इसकी परिचायक मानी जाती है. इसका प्रमुखकार्य रक्त अवयवों का विकेन्द्रीकरण होता है. प्रतिरक्षात्मक ह्रास और दुष्प्रभाव के कारण रक्त रिसाव होता है. कुछ अन्य कोशिकायें भी विषाणु विषाक्तता के कारण स्वतःनाशी (Neerotic) होने लगती हैं. प्लेटलेट्स के नाश के अतिरिक्त फाइब्रिनोलायसिस (रक्त थक्का जमाव अवरोध + थक्का विघटन), निम्न रक्तदाब संघात भी प्रकट हो जाता है.

प्रारंभ में इस व्याधि का निदान कष्टसाध्य होता है. लक्षणाधारित निदान केवल व्याधि का अनुमान प्रकट करता है. अन्य विषाणुजन्य व्याधियों और डेंग्यू व्याधि के लक्षणों में समानता होने के कारण प्रारंभ में डेंग्यू का संज्ञान कठिन होता है. व्याधियों में ज्वर लगभग होता ही है परंतु निम्नांकित विशिष्ट लक्षणों में से कम से कम दो की उपस्थिति होने पर डेंग्यू व्याधि की संभावना होती है :-

1. मितली तथा वमन (Nausea)
2. त्वचा रैश + तीक्ष्ण मांसपेशीय व्यथा.
3. WBC तथा प्लेटलेट्स की न्यूनता
4. रक्तक्षीणता + निम्न रक्त चाप
5. सकारात्मक आबंदन परीक्षण परिणाम
6. डेंग्यू व्याधि के चेतावनी लक्षणों में से कोई एक (सारणी 2 देखें)

सारणी - 2 डेंग्यू व्याधि के चेतावनी लक्षण

1. तीक्ष्ण उदरवर्ती शूल	5 अंग निश्चेष्टता
2. मितली + वमन	6. आकुलताधिक्य
3. यकृतवृद्धि	7. सीरोसल स्रावाधिक्य
4. भित्तिभ्रंशीय रक्तस्राव	8. निम्न रक्तदाब स्थिति

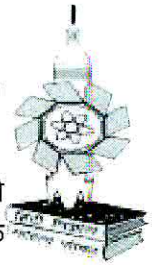

यद्यपि डेंग्यू की गंभीर स्थिति में ही चेतावनी लक्षण प्रदर्शित होते हैं, इसे चिकनगुनिया व्याधि से पृथक संज्ञान करने में भ्रामक स्थिति होती है. चिकनगुनिया डेंग्यू व्याधि से प्रभावित क्षेत्र में ही प्रदर्शित होती है और लक्षण भी प्रायः समान ही होते हैं. इसके अतिरिक्त - मलेरिया, लेप्टोस्पोरोसिस, विषाणुजन्य रक्तसंघावीय ज्वर (VHF) टायफाइड, मेनिंगोकॉकल व्याधि, खसरा (Measles) तथा फ्लू के कुछ लक्षण डेंग्यू व्याधि के लक्षणों से समानता रखते हैं. प्रयोगशाला परीक्षण डेंग्यू व्याधि के निदान हेतु विश्वसनीय सिद्ध हुए हैं. जहां पर इनकी उपलब्धता नहीं होती है, वहां आबंधन (Torniquet) परीक्षण करना श्रेष्ठ माना जाता है. इस परीक्षण में एक-एक रक्त दाबीय बंधन Diastolic तथा Systolic रक्त संचारण में बांध दिया जाता है. 5 मिनट तक रक्तस्रावीय अंतराल की गणना प्राप्त की जाती है. 10-20 प्रति 2.5cm^2 (1")^2 से अधिक होने पर डेंग्यू की पुष्टि कर ली जाती है.

डेंग्यू व्याधि के बाह्य लक्षणों के प्रदर्शन में विचित्रता होने के कारण प्रायः 80 फीसदी रोगियों में कोई भी लक्षण या तो प्रदर्शित ही नहीं होते हैं या फिर स्पष्ट नहीं होते हैं. कुछ में साधारण भ्रामक लक्षण ही प्रकट होते हैं, जैसे-ज्वर शूल आदि. लगभग 5 फीसदी व्याधिग्रस्त व्यक्तियों में अन्य लक्षण भी प्रदर्शित होते हैं. केवल 2 फीसदी - 3 फीसदी रोगी आपातकालीन स्थिति में जटिलता ग्रस्त होते देखे गये हैं. डेंग्यू व्याधि का प्रादुर्भाव 2-3 दिवस में हो जाता है और पूर्ण निष्पत्ति काल 15 दिनों का माना जाता है. कतिपय रोगाक्रांत व्यक्ति 7 दिनों में भी सामान्यता प्रदर्शित कर लेते

चित्र 4-डेंग्यू व्याधि के चिकित्सकीय लक्षणों का अभ्युदय

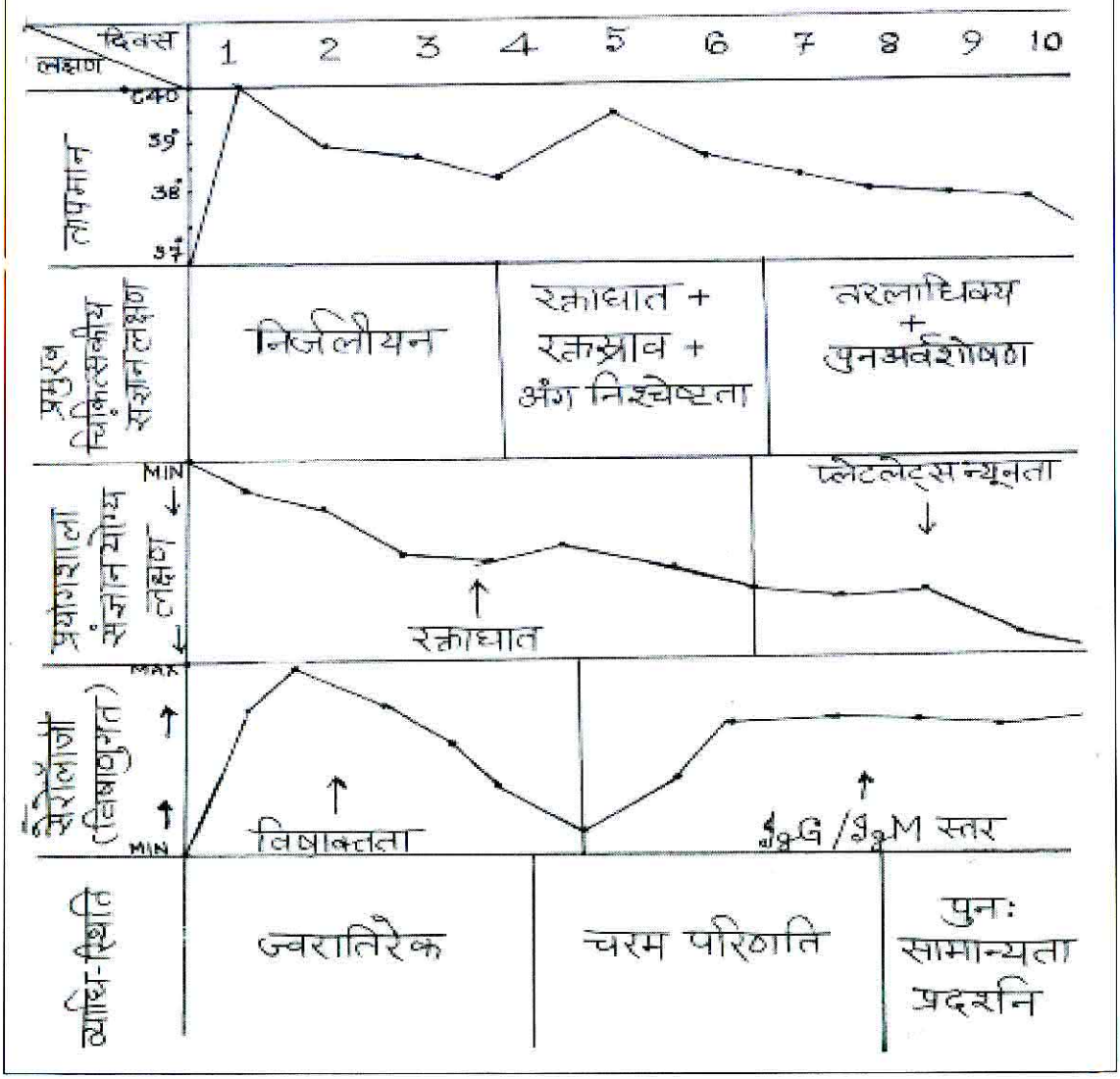

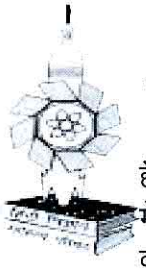

हैं. शिशुओं एवं 10 वर्ष की आयु तक के बालकों में प्रायः सर्दी, जुकाम के अतिरिक्त पाचन तंत्रीय व्यतिक्रम (वमन, मितली, अतिसार) के लक्षण भी प्रदर्शित होते हैं. प्रारंभ में लक्षणों का प्राकट्य मंदगति से होता है परंतु ज्वर अनिवार्य रूप से प्रदर्शित होता है. आपातकालीन जटिलताओं का उल्लेख तालिका 1 में किया गया है. ये जटिलताएं बालकों में अधिकतर संकट कालीन अवस्था उत्पन्न कर सकती हैं.

डेंग्यू व्याधि की उत्तरवर्ती स्थिति में तीव्र ज्वर, तीव्र सिरदर्द, नेत्रों के पश्चभाग में शूल, संधिशूल तथा मांसपेशीय व्यथा, त्वचा रैश प्रकट हो जाते हैं. व्याधि का प्रगतिपथ त्रिचरणीय होता है - ज्वरावस्था, चरमावस्था तथा पुनर्सामान्यावस्था. ज्वरावस्था में $\pm$ 40°c या $\pm$104°F तापमान हो सकता है. 2-7 दिनों तक ज्वर उत्कर्ष बना रहता है. शिरोशूल और व्यथा की तीक्ष्ण स्थिति भी रहती है. 50 फीसदी से 80 फीसदी रोगियों में त्वचाभ्रंश या रैश भी प्रदर्शित हो जाते हैं. कभी-कभी ये व्याधि की मध्यकालीन स्थिति में भी दिखाई पड़ते हैं. रैश खसरा (Measles) के सदृश होते हैं. कतिपय रोगियों में क्षुद्र रक्ताभ धब्बे (Ascites) भी प्रदर्शित होते हैं जो दबाने पर भी अदृश्य नहीं होते हैं. धब्बे भ्रंशित कोशिका रक्त वाहिनियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं. ज्वर वस्तुतः द्विघटकीय होता है. 1-2 दिन के अंतराल पर इसकी तीव्रता में परिवर्तन दिखाई देता है. व्याधि की चरम अवस्था में ज्वर में अपकर्ष देखा गया है. रोगी की नासिका तथा मुखगुहावर्ती श्लेष्मा से रक्तस्राव होने लगता है और वक्ष तथा उदरगुहा में तरल रक्तार्तव (Serum) एकत्र होने लगता है. इसका मुख्य कारण वर्धित रक्त प्रवाहिकाओं से प्रवेश्यता वर्धन होता है. (चित्र 4 देखें)

कम से कम 5 फीसदी व्याधिग्रस्त रोगियों में DSS तथा DHF की स्थिति प्रकट होने की संभावना होती है. विशेष रूप से उन रोगियों में यह स्थितियां प्रकट होती हैं जो पूर्व में डेंग्यू विषाणु के किसी अन्य उपजाति (Serotype) से संक्रमित हो चुके होते हैं. चरमावस्था कम आयुवर्ग के बच्चों में अधिक होती है. पुर्नसामान्यावस्था के समय रिसे हुये तरलों का अवशोषण होना प्रारंभ हो जाता है और 3-4 दिनों में पूर्ण हो जाता है. खुजली तथा मंद हृदय स्पंदन प्रदर्शित होता है. त्वचा में एक अन्य प्रकार का भ्रंश या रैश भी दिखाई देता जो वास्तव में मैक्यूलो पैप्यूलर या वैस्कूलायटिक हो सकता है. शनैः शैनैः त्वचा की बाह्य पर्त का भ्रंश होने लगता है और द्रवीय भारातिरेक (Fluid Overload stage) अवस्था प्रकट होती है. मस्तिष्क में इसके प्रभाव से सहसा आघात या चेतनशून्यता भी प्रकट हो सकती है.

डेंग्यू विषाणु संक्रमण मानव शरीर के अन्य तंत्रों को भी प्रभावित करता है. लक्षणों के प्राकट्य के अंतराल में कुछ रोगी (0.5फीसदी - 6 फीसदी) चेतनशून्य हो जाते हैं अथवा चेतना प्रत्युत्तरों में न्यूनता प्रदर्शित होती है जिसका मुख्य कारण विषाणुजन्य मस्तिष्क ऊतक उद्दीपन होता है. अधिकांश रोगियों में यकृत शोध या नाड़ी तंत्रीय व्यतिक्रम हो जाता है. कुछ अन्य विरल जटिलताओं में धरातलीय अस्थिमज्जा उद्दीपन, गुलेन-बैरी संकट, अतियकृत कार्यावरोध, हृदयवर्ती संक्रमण मुख्यरूप से प्रदर्शित हो सकते हैं.

प्रयोगशाला परीक्षण आधारित निदान

प्रथमदृष्ट्या रक्त-परीक्षण में WBC (श्वेत रक्त कणिका)

तालिका-1 डेंग्यू व्याधि के विशिष्ट लक्षण एवं जटिलतायें

1. ज्वरावस्था	2. चरमावस्था	3. पुनर्सामान्यावस्था
A अचानक उत्कर्षित ज्वर	A निम्न रक्तदाब	A चेतनशून्यता
B शिरोशूलाधिक्य	B प्लयूरल इंफ्यूजन	B झटके आना
C मुख, नाक से रक्तस्राव	C एसाइट्स का उदय	C खुजली का उदय
D मांसपेशीय तीक्ष्णशूल	D पाचनतंत्रगत रक्तस्राव	D मंद हृदय स्पंदन
E संधिगत शूल	E त्वचा रैश का उदय	E रक्ताल्पता
F मितली + वमन		
G अतिसार		

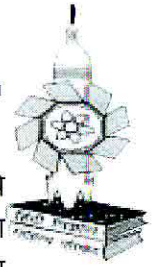

की कमी डेंग्यू व्याधि की पुष्टि करती है. प्लेटलेट्स की अपकर्षित संख्या तथा उपापचीय अम्लता भी पुष्टि हेतु माने जाते हैं. रोगी के यकृत में एमिनो ट्रांसफेरेज प्रकिण्व (Enzyme)AST एवं ALT का स्तर वर्धित होता है. गंभीर अवस्था में प्लाज्मास्तर नीचे गिर जाता है. रक्त में गाढ़ापन, तरल न्यूनता (Haematocrit) की स्थिति स्पष्ट होती है. कुछ रोगियों में निम्न एल्ब्यूमेनीय अवस्था (Hypoalbuminimia) के साथ-साथ प्ल्यूरल इनफ्यूजन भी प्रकट हो जाता है. DSS होने पर संज्ञान की पूर्वावस्था में पराध्वनि छायांकन (Ultrasonography-USG) के द्वारा निदान होता है. नाड़ी रक्तदाब भी 20mm/Hg से भी निम्न प्रदर्शित होता है. परवर्ती परिवहनीय भ्रंश (Collapse) भी संभव होता है. निम्न आयुवर्ग के बालकों में विलम्बित कोशिका पुनर्ग्रहण, हृदय स्पंदन वृद्धि तथा हाथ-पैरों में शीतलता प्रदर्शित होती है.

डेंग्यू व्याधि के प्रयोगशाला परीक्षणों का सटीक परिणाम लक्षणों के आविर्भाव के साथ जब प्राथमिक रूप से परिलक्षित होता है तो इसे 0 (शून्य) दिवसीय कहा जाता है. इसी प्रकार से प्रथम दिवस में प्राथमिक संक्रमण स्थिति, द्वितीय दिवस में वर्धित संक्रमण अवस्था तथा आगे के दिनों में क्रमानुगत उत्कर्षी लक्षण प्रदर्शित होते हैं. षष्ठम दिवस में IgG1 प्रतिकार्यों का संज्ञान भी संभव होता है जो दशम दिवस पर्यन्त किया जाना संभव होता है. ये परीक्षण केवल सूक्ष्म जीवविज्ञान प्रयोगशाला में ही संभव होते हैं. विषाणु पृथक्करण विधि के माध्यम से कोशिका संवर्द्धन, PCR द्वारा नाभिकीय अम्ल संज्ञान, विषाणु प्रतिजनीय संज्ञान (Virus Antigen Test) NS1परीक्षण तथा विशिष्ट प्रतिकाय सीरम परीक्षण द्वारा संपन्न किये जाते हैं. विषाणु पृथक्करण एवं नाभिकीय अम्लसंज्ञान प्रतिजनीय संज्ञान की तुलना में अधिक विश्वसनीय होते हैं. अधिक व्यय साध्य होने के कारण ये परीक्षण सर्वसुलभ नहीं होते हैं. NS1 का संज्ञान व्याधि की ज्वरावस्था के समय आरंभित संक्रमणावस्था में 80-90 फीसदी रोगियों में संभव होता है परंतु अनुवर्ती स्थिति में संभाव्यता घटकर 60 फीसदी तक होती है. प्रारंभ में अधिकांश परीक्षण नकारात्मक रहते हैं. प्रथम 7 दिवस पर्यंत PCR तथा प्रतिजनीय परीक्षण ही अधिक सफल सिद्ध होते हैं.

वर्ष 2012 में डेंग्यू के संज्ञान हेतु प्रतिकाय परीक्षण की विश्वसनीयता सिद्ध हुई. इसकी सफलता व्याधि की उग्रतम अवस्था पर निर्भर होती है. सीरम विज्ञान आधारित परीक्षण व्याधि की व्यापक सभी स्थितियों में अच्छा परिणाम प्रदान करते हैं. डेंग्यू विषाणु के विशिष्ट प्रतिकायों (IgG तथा IgM) के द्वारा व्याधि का निदान सरल होता है. इनका प्रवर्तन व्याधि के संक्रमण के 4-5 दिवस उपरांत होता है. व्याधि की

चित्र-5 डेंग्यू संज्ञानार्थ प्रयोगशाला परीक्षण परिणाम

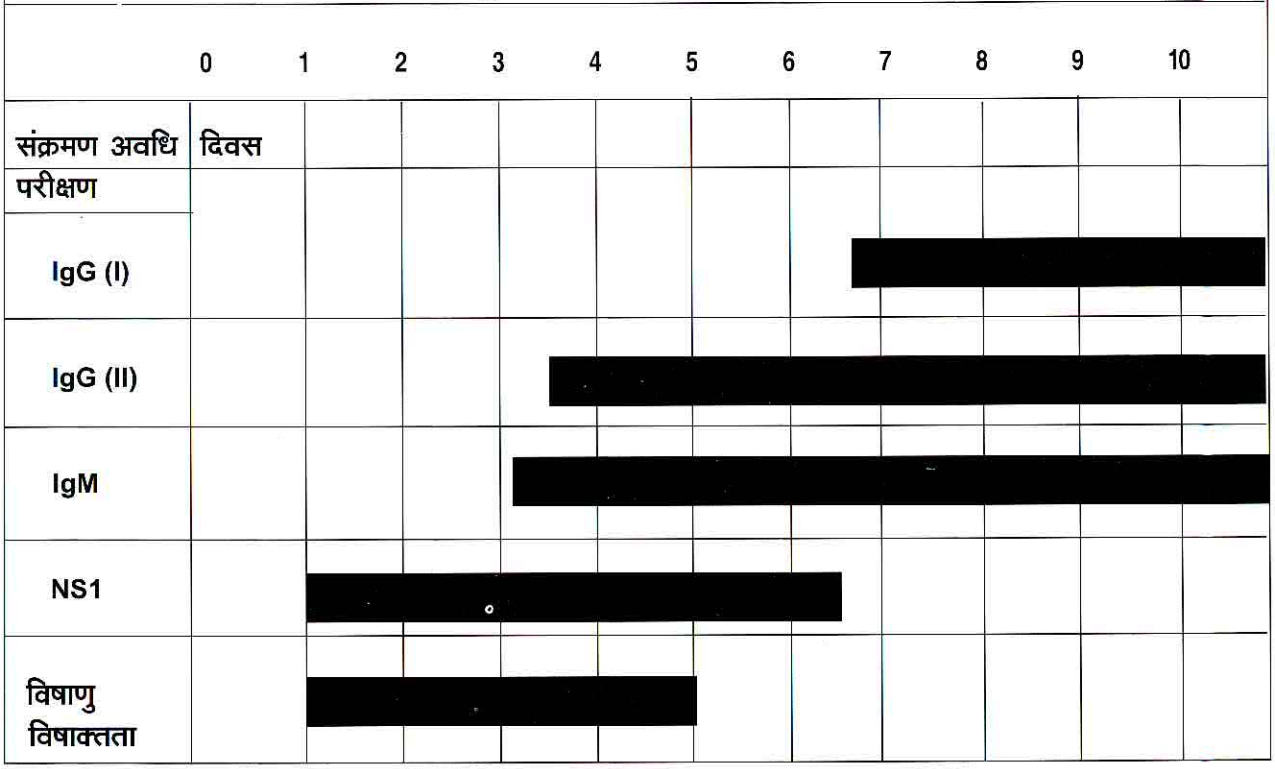

पुनः सामान्यता की अवधि में भी IgM की उपस्थिति प्रदर्शित होती रहती है. IgG II की उपस्थिति प्रदर्शित हो सकती है. IgGII की उपस्थिति लक्षणों के अभाव में भी प्रदर्शित हो सकती है जो पूर्ववर्ती डेंग्यू संक्रमण की पुष्टि करता है. विषाणु के अन्य सेरोटाइपों (उपजातियों) के प्रति सुरक्षात्मक प्रतिरक्षण हेतु IgG और IgM प्रतिकायों का विशिष्ट योगदान होता है. इनके परीक्षण के साथ अन्य फ्लेवीवायरस विषाणुओं का अन्तर्द्वन्द हो सकता है, जो छद्म घनात्मक परिणाम प्रदान करता है. पीतज्वर व्याधि (YFD) जापानी मस्तिष्क ज्वर (JE) के प्रथम संक्रमण या टीकाकरण के उपरांत मात्र IgG का संज्ञान पुष्टिकारक नहीं सिद्ध होता है अपितु IgM की उपस्थिति डेंग्यू हेतु पुष्टिकारक मानी जाती है (चित्र 5 देखें)

विषाणु-विज्ञान

विषाणु वस्तुतः विष उत्पादक सूक्ष्म जीवाणु माने जाते हैं. इनका प्रमुख गुण इनका अत्यंत सूक्ष्म छिद्रों से सरलता से पार हो जाने की क्षमता माना जाता है. अनेक विषाणुओं में प्राणि कोशिकाओं को संक्रमिक करने की क्षमता होती है. यद्यपि इनमें वास्तविक कोशिका के लक्षण नहीं होते हैं, तथापि स्वतः प्रजनन,आनुवंशिकता, उत्परिवर्तन (Mutation), पुनप्रतिलिपीकरण (Replication) के गुण विद्यमान होते हैं. इन्हें केवल EM (इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी) के द्वारा ही देखा जा सकता है. जीवित कोशिका के बाहर ये निष्क्रिय अवस्था में रहते हैं तथा मणिभीकृत स्वरूप भी धारण कर लेते हैं. कोशिका के संपर्क में आने पर पोषी के ऊतकों में प्रविष्ट होते ही सक्रिय होकर प्रजनन करने लग जाते हैं और व्याधियों का प्राकट्य होने लगता है.

डेंग्यू विषाणु की आकृति मूलरूप से विंशफलकीय (Icosahedric) होती है. EM में यह षट्कोणीय अथवा पंचकोणिक निक्षेपों में दिखाई देता है. इनका आकार लगभग ØX174 होता है. इनमें 12-16 कैप्सीमीयर्स होते हैं. कैप्सोमीयर्स के कारण विषाणु का कैप्सिड (शरीर) न्यूनतम आवश्यक

चित्र 6- डेंग्यू विषाणु का प्रारूपिक रेखाचित्र (*EM*)

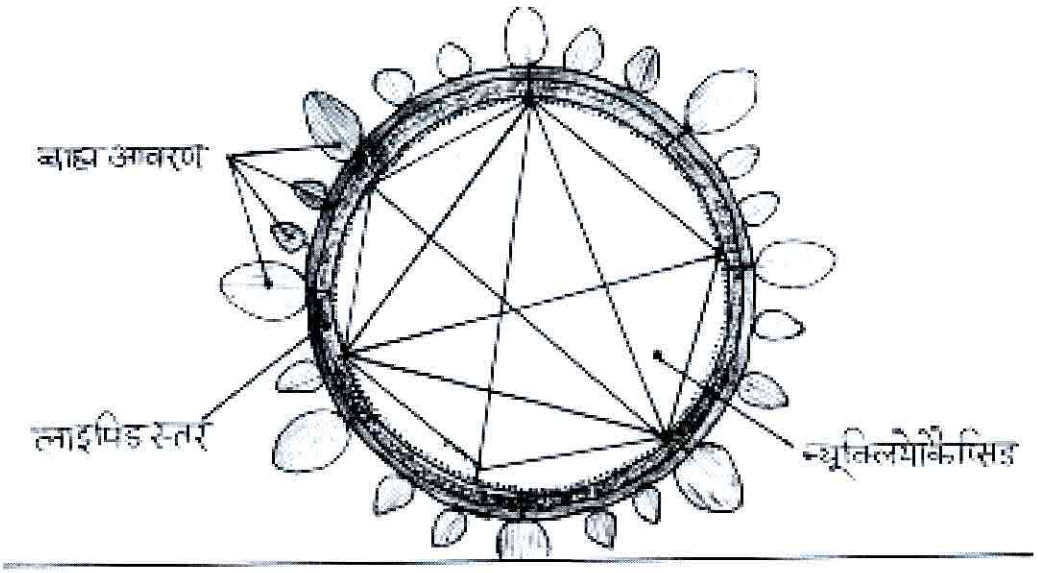

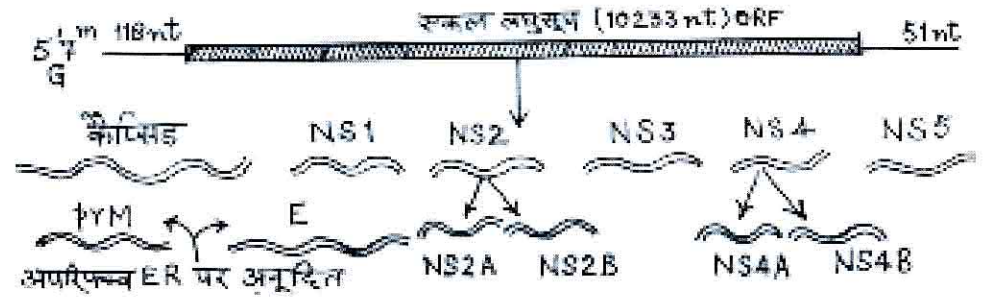

चित्र 6 *A* - विषाणु की प्रतिलिपीकरण क्रिया

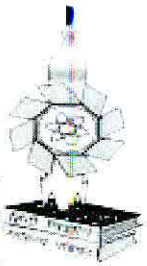

ऊर्जा से परिपूर्ण और जीवित रहता है. (चित्र 6,7 देखें) डेंग्यू विषाणु के प्रमुख संवाहक (Vector) मच्छर होते हैं जो कीटवर्गीय प्राणी हैं. कीटवर्गीय पोषी होने के कारण डेंग्यू विषाणु को 'आर्बोवायरस' समूह का सदस्य माना जाता है. मानव शरीर में संक्रमण के द्वारा डेंग्यू व्याधि का प्रादुर्भाव होता है. DEN-V (डेंग्यू वायरस) RNA (राइब्रोज न्युक्लियिक एसिड) संवर्ग का विषाणु माना जाता है. यह फ्लेवीवायरिडी कुल का सदस्य है और इसका वंशानुगत नाम 'फ्लेवीवायरस' है. इसी प्रजाति के अन्य विषाणुओं के पीतज्वर विषाणु (YFV), पश्चिमी नील ज्वर विषाणु (WNFV), जापानी मस्तिष्कज्वर विषाणु (JEV) प्रमुख हैं. कुछ अन्य विषाणु भी संक्रमण के द्वारा मनुष्यों में व्याधि उत्पन्न करते हैं - कैसानूर वनक्षेत्रीय व्याधि (KFD), ओमस्क रक्तस्रावी ज्वर विषाणु (OHFV), किलनीजन्य मस्तिष्क ज्वर विषाणु (TEFV).

डेंग्यू विषाणु के वंशद्रव्य (Qenome) में लगभग 11,000 न्यूक्लियोटाइड क्षार होते हैं जो तीन विभिन्न प्रोटीन अणुओं का प्रकूटन करते हैं (C,prM तथा E) और विषाणु कणों (Virions) का सृजन करते हैं. सात अन्य प्रकार के प्रोटीन अवयवों (NS1,NS2, NS2b, NS3, NS4a, NS4b तथा NS5) का भी प्रकूटन होता है. ये केवल संक्रमित कोशिकाओं में ही उपस्थित होते हैं. विषाणुओं के प्रतिलिपीकरण में इनकी अनिवार्यता होती है

(चित्र 6Aदेखें)

डेंग्यू विषाणु की 4 (रक्तार्तआधारित) उपजातियां (Serotypes) होती हैं -DENV-1, DENV-2, DENV-3 तथा DENV-4- इनका विभेदन तथा संज्ञान इनकी प्रतिजनीय क्षमता के आधार पर किया जाता है.

विषाणु प्रतिलिपीकरण

मानव ऊतक में प्रविष्ट हो जाने के तत्काल बाद आंतरिक ऊतकीय स्तर पर स्थित एक प्रकार की डेन्ड्रायटिक प्रकृति की कोशिकाओं (Langerhans Cells) से विषाणु संबद्ध हो जाता है. कोशिकीय प्रोटीनों (आवरण पर स्थित) तथा विषाणु जन्य प्रोटीनों के संयोजन के द्वारा विषाणु का प्रवेश कोशिकाओं में हो जाता है. इस भेदन क्रिया में विशेष रूप से C- प्रकार की लेक्टिनों (DC-SIGN), मैनोज संग्राहकों (Mannose Receptors) तथा CLEC-5A अवयव की भूमिका महत्वपूर्ण होती है. DC-SIGN अवयव, जो अवशिष्ट बाल संग्राहक होता है, एक प्रमुख छेदक का कार्य करता है. डेन्ड्रायटिक कोशिका लसीका ग्रंथि की ओर गतिशील हो जाती है और विषाणु वंशानुक्रम आवरणीय कोशिकाओं में अनुवादित होकर अंर्तजालीय स्थापन करने लगता है.

कोशिका का प्रोटीन संश्लेषण उपक्रम नवीन विषाणुजन्य प्रोटीनों का उत्पादन करने लगता है जो विषाणु के RNAका प्रतिलिपीकरण करती हैं और विषाणुकणों (Virions) का सृजन करती हैं. अपरिपक्व विषाणुकण गॉल्जी उपक्रम में स्थानांतरित हो जाते हैं जहां पर कुछ प्रोटीनें शर्करा श्रीणीय स्वरूप (Glycoproteins) धारण कर लेती हैं. इस प्रक्रिया के माध्यम से परिपक्व विषाणु संक्रमित कोशिका के बाह्यावरण पर एकत्र हो जाते हैं और कोशिका बहिर्गमन (Exocytosis) द्वारा मुक्त हो जाते हैं. ये दूसरी स्वस्थ कोशिकाओं में संक्रमण हेतुसक्षम होते हैं. WBC वर्गीय Monocytosis और Macrophages में प्रवेश हेतु प्रयास करना प्रारंभ कर देते हैं.

संक्रमित कोशिका की आरंभिक प्रतिक्रिया Interferons का उत्पादन होती है जो एक प्रकार के Cytokines होते हैं. ये अंतर्कोशिकीय प्रतिरक्षण तंत्र के माध्यम से विषाणु संक्रमण के विरुद्ध अनेक संरक्षणों को सक्रिय कर देते हैं. JAK-STAT प्रणाली के द्वारा बहुवर्गीय प्रोटीनों के उत्पादन के उन्नयन के द्वारा सुरक्षा प्रदान करने लगते हैं. डेंग्यू विषाणु की कुछ उपजातियां इस प्रक्रिया को मंद कर देती हैं. Interferons के द्वारा प्रतिकाय सृजन भी प्रारंभ हो जाती है. जो विषाणुओं और T- कोशिकाओं के विरुद्ध कार्य करने लगते हैं. T-कोशिकायें विषाणु संक्रमित कोशिका पर सीधे आक्रमण करती हैं. कुछ प्रतिकाय विषाणु प्रोटीनों से आबद्ध होकर कोशिकीय भक्षण (Phagocytosis) क्रिया के द्वारा नष्ट करने में सक्षम होते हैं. कुछ अन्य प्रतिकाय विषाणुओं से दोषपूर्ण आबंध कर पाते हैं और उन्हें विनाश के स्थान पर प्रतिलिपीकरण में सहायता देने लगते हैं.

डेंग्यू का महामारी स्वरूप

डेंग्यू व्याधि की मृत्युदर उपचार के अभाव में 5 फीसदी होती है. उपचार समय पर उपलब्ध हो जाने पर यह 1 फीसदी हो सकती है. व्याधि प्रबंधन उचित न होने के कारण गंभीर स्थिति में मृत्यु की संभावना 26-30 फीसदी होती है. 110 से अधिक देशों में यह स्थानीय महामारी के रूप में व्याप्त है. प्रतिवर्ष विश्व में यह स्थानीय महामारी के रूप में व्याप्त है. प्रतिवर्ष विश्व में 50 से 300 लाख व्यक्ति डेंग्यू से आक्रांत हो जाते हैं. लगभग 25,000 काल-कवलित हो जाते हैं. दक्षिण पूर्व एशिया के 12 देशों में वर्ष 2000-2010 के मध्य प्रति वर्ष लगभग 3,000,000 व्यक्ति डेंग्यू से पीड़ित हुए और 6,000 के आस-पास मृत्यु को प्राप्त हो गये.

कीटवर्गीय संवाहकों द्वारा प्रसारित संक्रमणों में डेंग्यू का संकट प्रति 10,000,00 मनुष्यों में लगभग 1600 के लिए

विकलांगता का मुख्य कारण भी होता है. वर्ष 1998 में डेंग्यू मलेरिया के बाद दूसरे स्तर की घातक उष्णकटिबंधीय महामारी सिद्ध हुई थी. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) यद्यपि इसे 17 उष्ण कटिबंधीय व्याधियों में से एक मानता है तथापि इसकी व्यापकता में वर्ष 1960 की तुलना में वर्ष 2010 में 30 गुनी वृद्धि देखी गई है. इस वृद्धि के संभावित प्रमुख कारकों में शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, पर्यटन, वैश्विक उष्णता वृद्धि, पर्यावरण प्रदूषण तथा स्वच्छता की न्यूनता है.

भौगोलिक वितरण की दृष्टि से स्थानीय महामारी के रूप में डेंग्यू की व्यापकता विषुवत् रेखा के क्षेत्रों में 70 फीसदी तथा एशिया और प्रशांत देशों में 75-80 फीसदी तक देखी जा रही है. संयुक्त राज्य अमेरिका में 3-8 फीसदी तक डेंग्यू संक्रमण का संज्ञान हुआ है. महामारी क्षेत्रों से पर्यटन और प्रव्रजन द्वारा अन्य क्षेत्रों में आने वाले व्यक्तियों में भी इसका पुनः संक्रमण हो सकता है. अन्य कीटवर्गीय संवाहित विषाणुओं की भांति डेंग्यू विषाणु भी प्रकृति में चक्रीय मार्ग से अनुरक्षित रहता है. द.पू.एशिया के वनों में विषाणु अनुरक्षित रहता है और मादा Aedes मच्छरों से संवाहित होता रहता है. नगरों और उपनगरीय क्षेत्रों में यह विषाणु घरेलू Aedes aegyptiमच्छरों के द्वारा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्यतः व्यक्ति से व्यक्ति में Aedes aegypti और Aedes albopictus मच्छरों के काटने से पहुंचकर व्याधि उत्पन्न करता है. प्रारंभ में यह नगरीय स्तर पर ही व्याप्त होता है. पूर्व में यह व्याधि ज्वर के रूप में द.पू. एशिया में ही व्याप्त थी, वर्तमान में द.चीन, भारतीय उपमहाद्वीप, प्रशांत क्षेत्र और मध्य अमेरिका में भी इसका प्रकोप ज्ञात हो रहा है. भविष्य में इस व्याधि का प्रसार युरोपीय देशों में भी हो सकता है (चित्र 6 B देखें).

डेंग्यू व्याधि का वर्गीकरण -

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार डेंग्यू व्याधि के दो वर्ग होते हैं - जटिलताहीन तथा गंभीरतायुक्त. गंभीरवर्ग के डेंग्यू ज्वर में तीव्र रक्तस्राव, अंगनिश्चेष्टता तथा प्लाज्मा रिसाव प्रदर्शित होता है. अन्य स्वरूप जटिलताहीन वर्ग में माने जाते हैं. वर्ष 2010 में इस वर्गीकरण में संशोधन किया गया और तीन वर्ग माने गये - डेंग्यू ज्वर, डेंग्यू रक्तस्रावी ज्वर तथा भिन्नताहीन ज्वर (UDF).डेंग्यू रक्तस्रावी ज्वर (DHF) को पुनः 4 उपवर्गों में विभक्त किया गया - उपवर्ग 1, 2, 3 तथा 4 - वर्ग 1 क़े लक्षणों में साधारण चर्म रैश, ज्वर तथा घनात्मक आबंध परीक्षण प्रदर्शित होते हैं. उपवर्ग-2 में त्वचा के अंतःस्तरीय ऊतकों में रक्तस्राव प्रदर्शित होता है. उपवर्ग-3 में चिकित्सकीय आघात स्पष्ट प्रदर्शित होता है, अन्य परीक्षण भी घनात्मक होते हैं. उपवर्ग 4 में गंभीर आघात, निम्न रक्त दाब तथा नाड़ी गति शून्यता प्रदर्शित होते हैं. उपवर्ग-3 तथा 4 डेंग्यू सांघातिक संकट (Dengue Shock Syndrome) के नाम से भी जाने जाते हैं.

डेंग्यू व्याधि की रोक-थाम

डेंग्यू व्याधि के विषाणु का संक्रमण रोकने हेतु अभी तक कोई टीकौषधि उपलब्ध नहीं हो सकी है. इस विषाणु के संवाहक ऐडिस मच्छरों के उन्मूलन और उनके दंश से बचाव के द्वारा ही रोक-थाम संभव होता है. WHO द्वारा समेकित संवाहक नियंत्रण कार्यक्रम की अनुशंसा की गई है. इस कार्यक्रम के 5 प्रमुख घटक हैं - सामाजिक जागरूकता तथा प्रशासन की सहभागिता, स्वास्थ्य सेवा संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण, व्याधि नियंत्रण समेकित कार्यक्रम, पुष्टि आधारित निर्णय (जो अंतप्रवाही लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें) और स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर पर्याप्त प्रतिक्रियात्मक क्षमता.

प्राथमिक विधा के अंतर्गत ऐडिस मच्छरों के उन्मूलन हेतु

चित्र 6 *B* - डेंग्यू व्याधि का प्रसार चक्र

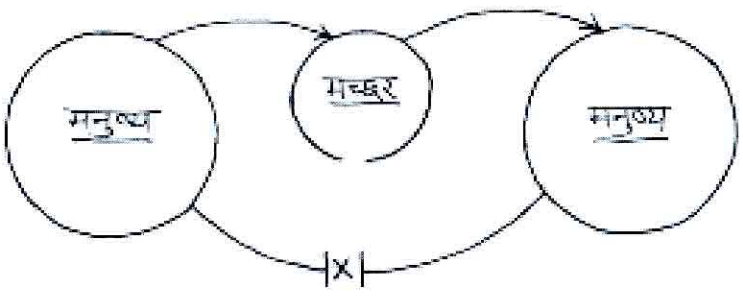

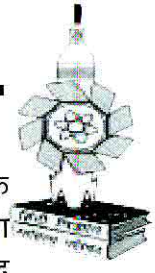

उनके वासस्थानों को समाप्त करना प्रमुखरूप से अनिवार्य होता है. जलसंग्राही पात्रों, वर्षाजल या प्रवाहीजल एकत्रीकरण स्थलों को समाप्त करना सभी नागरिकों का कर्तव्य होना चाहिए. गड्ढों, तालाबों, जलसंग्राहकों आदि में कीटनाशी अथवा जीवनाशी द्रव्यों का छिड़काव, मच्छरों का जैविक नियंत्रण (विशेष प्रजाति की मछलियों द्वारा) से रोक-थाम संभव है. यद्यपि Organophosphates और पायरेश्रम आधारित कीटनाशियों का प्रयोग प्रभावहीन देखा जा रहा है अतएव सर्वोत्तम नियंत्रक विद्या मच्छरों के प्रजनन और वासस्थानों का उन्मूलन ही सिद्ध हुई है. पूरी बांह के परिधानों, मच्छरदानी तथा कीट बहिष्कारक रसायनों का प्रयोग (DEET सर्वश्रेष्ठ है) भी प्रभावी होते हैं.

व्याधि-उपचार एवं प्रबंधन

डेंग्यू व्याधि के विषाणु के नाश हेतु कोई विशिष्ट औषधि उपलब्ध नहीं हुई है. लाक्षणिक उपचार के अंतर्गत प्राथमिक रूप से अपेक्षित द्रव संतुलन करना आवश्यक माना जाता है. मुखाधारित पुनः जलीकरण उपचार सावधानी के साथ प्रारंभ कर देना लाभप्रद सिद्ध होता है. यथासंभव शीघ्रतर व्याधिग्रस्त रोगी को चिकित्सालय पहुंचाना श्रेयस्कर होता है. अंतर्शिरा द्रव प्रवेश चिकित्सक की देख-रेख में ही कियाजाना चाहिए. चेतावनी लक्षणों के आधार पर अपेक्षित उपचार तथा व्याधि प्रबंधन का निर्णय चिकित्सक द्वारा लिया जाना आवश्यक है. अतः शिरावर्ती जलस्थापन की आवश्यकता प्रथम 1-3 दिवस पर्यंत होती हैं. जलीकरण की आवश्यकता मूलरूप से रोगी के मूत्रोत्सर्ग की आवृत्ति तथा मात्रा पर निर्भर होती है. सामान्यतया 0.5-1ml/kg./hr. होती है. इस गणना के अन्य घटकों में स्थायी प्रत्यक्ष लक्षण, सामान्य रक्त संघात (Haematocrit) प्रमुख माने जाते हैं. उत्तरवर्ती उपचारों में पाचनतंत्रीय नलिकारोपण, अंतर्मासपेशीय टीकाकरण एवं

चित्र 7- डेंग्यू विषाणु का TEM सूक्ष्मदर्शी द्वायाचित्र

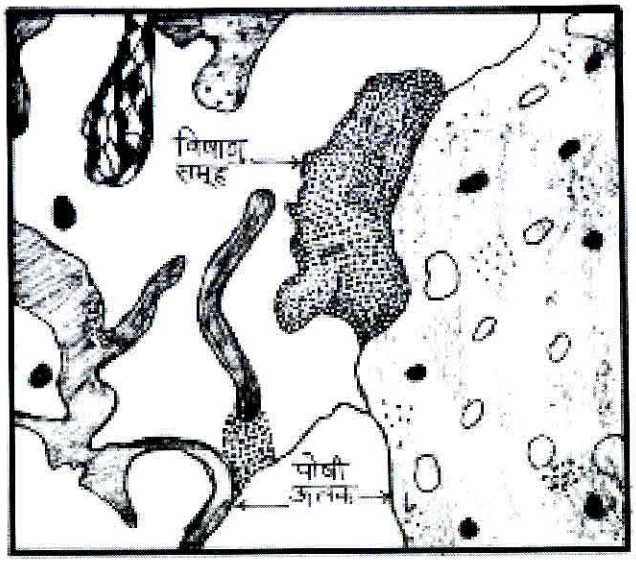

चित्र 7A सकल डेंग्यू विषाणु का EM सूक्ष्मदर्शी चित्रप्रारूप

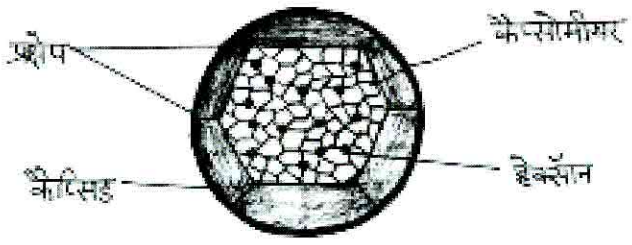

धमनी छेदन क्रियायें विवाहित और वर्जित मानी जाती हैं. इनमें रक्तस्रावीय संकट उत्पन्न हो सकता है.

औषधियों में एसीटोमिनोफेन (पैरासीटेमॉल) की अनुशंसा ज्वर तथा व्याकुलता को शांत करने हेतु की जाती है. अन्य वेदनानाशी औषधियों (आइब्यूप्रोफेन, ऐस्पिरीन, नोवाल्जिन, फ्लेक्सॉन इत्यादि) का प्रयोग नहीं करना चाहिए. स्थायी जीवंत लक्षणों - रक्ताघातीय दशा में रक्त प्रतिस्थापन किया जाता है. इसके द्वारा हीमोग्लोबिन की सघनता का अपेक्षित स्तर बनाये रखने में सहायता प्राप्त होती है. अन्यथा व्याधि संघातीय स्तर पर पहुंचकर संकट उत्पन्न कर सकती है. उत्तरवर्ती जटिल अवस्था में पूर्ण रक्त अथवा पैकेटीकृत रक्तरूधिर कणिकाओं के प्रतिस्थापन हेतु अनुशंसा की जाती है. परंतु प्लेटलेट्स अथवा हिमीकृत प्लाज्मा प्रतिस्थापन वर्जित होता है.

पुनर्सामान्यावस्था में द्रवातिरेक की वर्जना हेतु अंतः शिरावर्ती द्रव प्रवेश रोक देना होता है. यदि रोगी चरम अवस्था से मुक्त हो चुका होता है तो उसके लिए एक मूत्रल लूप (Diuretic Loop) जैसे-फ्यूरोसेमायड का प्रयोग लाभप्रद माना जाता है जो रक्तप्रवाही तंत्र से अतिरिक्त द्रव्य का निष्कासन सरल कर देता है.

शोधकार्य और संभावनायें

डेंग्यू व्याधि के उपचार तथा नियंत्रण हेतु संपन्न हो रहे शोधकार्यों का लक्ष्य मुख्यतः व्याधि नियंत्रण तथा उपचार विद्या का विकास माना जा रहा है. इसके अंतर्गत संवाहक नियंत्रण, उन्मूलन, टीकौषधि निर्माण तथा विषाणु संहारक औषधि का अनुसंधान कार्यक्रमों का निष्पादन किया जा रहा है. संवाहक (मच्छर) उन्मूलन तथा नियंत्रण हेतु अधुनातन सफल पद्धति का संज्ञान किया गया है, इसके संदर्भ में निम्न प्रक्रियाओं की अनुशंसा की गई है :-

1. स्थिरजल में GUPPY (Poecilia reticulata) या (Copepod) जीवों को छोड़ दिया जाता है जो मच्छरों के लार्वा, प्यूपा खा लेते हैं. इस प्रकार मच्छरों का विनाश हो जाता है.

2. Wolbachia प्रजाति के जीवाणुओं से मच्छरों को संक्रमित कर उन्हें डेंग्यू प्रतिरोधी बनाने के द्वारा व्याधि उन्मूलन संभव होता है. इस विद्या का प्रयोगात्मक परीक्षण किया जा रहा है.

3. संतति विज्ञान पर आधारित कुछ अन्य विद्याओं द्वारा नर GM (संतति परिमार्जित) Aedes मच्छरों का सामान्य Aedes मच्छरों (मादा) के संयोग के द्वारा व्याधिरोधक मच्छरों के उत्पादन से रोग उन्मूलन संभव है.

डेंग्यू व्याधि के नियंत्रण हेतु टीकौषधि निर्माण कार्यक्रमों हेतु प्रयास हो रहा है, जो अन्यान्य विषाणु उपजातियों के विनाश हेतु प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं. इस दिशा में एक नवीन शोध परिणाम द्वारा यह संज्ञान किया गया है कि ADE (टीकौषधि प्रतिकार्य आधारित विवर्धन) के फल स्वरूप गंभीर व्याधि संकट उत्पन्न हो सकता है. समस्त घटकों के परिप्रेक्ष्य में आदर्श टीकौषधि के विषय में निम्नांकित मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं :-

1. सुरक्षित एवं प्रभावी गुणों की उपस्थिति
2. 1-2 टीकाकरणों से लक्ष्यों की प्राप्ति
3. समस्त विषाणु उपजातियों हेतु प्रभावी
4. ADE का सृजन संभव न हो
5. सरलता से परिवहन योग्य एवं भंडारणयोग्य
6. मूल्याधारित तथा सर्वसुलभता होना

अद्यतन कई टीकौषधियों का विकास और परीक्षण किया गया है. सर्वाधिक प्रभावी टीकौषधि वास्तव में पीतज्वर विषाणु (YFV) तथा डेंग्यू विषाणु के चार प्रतिरूपों में से किसी एक उपजाति के सम्मिश्रण पर आधारित है. यह निर्बलीकृत मिश्रण सफल सिद्ध हो रहा है. वर्तमान में इसका परीक्षण प्रगति पर है. वर्ष 2015 में ऐसी टीकौषधि की उपलब्धता बाजार में संभव है. Aedes मच्छरों के नाश और नियंत्रण हेतु प्रयास तथा डेंग्यू रोधी टीकौषधि के निर्माण तथा विकास के अतिरिक्त विषाणुनाशी औषधियों के हेतु अनुसंधान कार्य हो रहा है. विषाणुजनित प्रोटीनों का समुचित संज्ञान प्रभावी औषधि निर्माण हेतु आवश्यक घटक माना जाता है. इस दिशा में अनेक स्वीकार्य लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं - प्रथमदृष्ट्या अध्ययन के अंतर्गत विषाणुजनित RNA आधारित RNA पोलीमेरेज (एक प्रकिण्व जो NS1 प्रोटीन द्वारा प्रकूटित होता है) का प्रतिरोध उत्पन्न किया जाता है जो विषाणु के संतति उत्पादक तत्वों का न्यूक्लियोसाइड सदृश अवयवों की उपस्थिति में प्रतिलिपीकरण करने में सहायक होता है. इसके अतिरिक्त विषाणुजन्य प्रोटियेज (जो NS3 के द्वारा प्रकूटित होता है) के प्रतिरोधकों की संभावना भी उत्पन्न होती है. यह प्रकिण्व (Protease) विषाणु प्रोटीनों का संजोयन करता है. अंततः विषाणु प्रवेश क्रिया पूर्णतः अवरुद्ध हो जाती है. इस प्रकार भविष्य में औषधीय प्रबंधन के द्वारा विषाणु के ऊतकीय प्रवेश की संभावना शून्य होने की आशा है. इन प्रतिरोधकों के सफल परीक्षण विषाणु विवर्धन क्रिया (5'Capping Process) को भी अवरुद्ध करने तथा प्रतिलिपीकरण को बाधित करने हेतु प्रभावी सिद्ध होने की प्रबल संभावनायें हैं.

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-२०१२ में प्रथम पुरस्कार प्राप्त लेख

क्या आप जानते हैं कि आप थैलेसेमिया के वाहक हो सकते हैं?

डॉ.अजित गोरक्षकर, कला अजित देसाई-गोरक्षकर
राष्ट्रीय प्रतिरक्षा रूधिर विज्ञान संस्थान, (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद),
१३वीं मंजिल, नयी बहुमंजिल इमारत, के.ई.एम.अस्पताल परिसर,
परेल, मुंबई-४०० ०१२

अ.साधारण जानकारी :

थैलेसेमिया यह एक गंभीर अनुवांशिक रोग है. यह हिमोग्लोबीन के कणों की असमानता के कारण होता है. सामान्य पुरूषों में हिमोग्लोबिन की मात्रा 14-15 ग्राम/डीएल और महिलाओं में 12-14 ग्राम/डीएल होती है. जब किसी व्यक्ति में हिमोग्लोबिन की मात्रा सामान्य मात्रा से कम होती है, तब उसे ॲनिमिया हो गया ऐसा कहा जाता है. ॲनिमिया होने के कई कारण हैं. थैलेसेमिया यह भी ॲनिमिया का एक प्रकार है. यह कैसा होता है ये जानने के लिए अपने खून में रहनेवाले हिमोग्लोबीन के प्रकार के बारे में तथा गुणसूत्रों के बारे में जानकारी लेना जरूरी है.

हिमोग्लोबिन एक लाल रंग तत्व हिम और एक प्रोटीन ग्लोबीन से बना होता है. हिम लौह तत्व से पूर्ण रहता है. ग्लोबिन विभिन्न प्रकार के अमिनो एसिड की शृंखला से बना है जिसे अल्फा (α), बीटा (β), गामा (γ) और डेल्टा (δ) कहते हैं. एक सामान्य मनुष्य में तीन प्रकार के हिमोग्लोबीन होते हैं. नवजात बालक तथा वयस्क में उनका परिणाम अलग अलग रहता है.

जब बच्चे जन्म लेते हैं तब उनमें मुख्य रूप से हिमोग्लोबिन एफ या फिटल हिमोग्लोबिन रहता है. इसके साथ भिन्न मात्रा में हिमोग्लोबिन 'ए' या एडल्ट हिमोग्लोबिन और थोड़ी मात्रा में हिमोग्लोबिन 'ए2' रहते हैं. जब बच्चा 6 माह का हो जाता है तो फिटल हिमोग्लोबिन की जगह एडल्ट हिमोग्लोबिन लेता है तथा थोड़ी मात्रा में फिटल हिमोग्लोबिन और हिमोग्लोबिन ए2 रह जाता है. सामान्य व्यक्ति में यह मात्रा जीवन भर के लिए एक जैसी रहती है. हिमोग्लोबिन के कण तैयार होते समय दो प्रकार के मुख्य दोष दिखाई देते हैं.

हिमोग्लोबिन प्रकार	नवजात बालक (%)	वयस्क (%)
हिमोग्लोबिनी 'ए'	30-40	96-97
हिमोग्लोबिन 'एफ'	60-70	<2.0
हिमोग्लोबिन 'ए 2'	< 2.0	<3.5

1. ग्लोबिन चेन की रचना में परिवर्तन (सिकल सेल ॲनिमिया)

2. ग्लोबिन चेन की उत्पत्ति में कमी या अनुपस्थिति (थॅलेसेमिया)

जैसे कि पहले बताया कि हिमोग्लोबिन में विभिन्न प्रकार की ग्लोबिन चेन रहती हैं, इसलिए जिस चेन की उत्पत्ति में दोष है उसी चेन की नाम से थैलेसेमिया के प्रकार को जाना जाता है.

α चेन की उत्पति में दोष (α थैलेसेमिया)

β चेन की उत्पति में दोष (β थैलेसेमिया)

γ चेन की उत्पति में दोष (γ थैलेसेमिया)

हमारे देश में बीटा थैलेसेमिया एक बड़ी समस्या है.

ब. गुणसूत्र :

कोई भी अनुवांशिक रोग माता या पिता से बच्चों को रोग निर्माण करनेवाले जीनसहित गुणसूत्र मिलने से होता है. हर मनुष्य को एक गुणसूत्र माता से तथा एक गुणसूत्र पिता से मिलता है. हर मनुष्य के शरीर में 22 जोड़ अलग-अलग गुणसूत्र के तथा एक जोड़ा लिंग गुणसूत्रों का होता है. थैलेसेमिया में जब केवल माता या पिता से थैलेसेमिया जीन सहित गुणसूत्र बच्चे को मिलता है तब उसे 50 प्रतिशत थैलेसेमिया कहा जाता है. ऐसे लोगों को थैलेसेमिया वाहक तथा थैलेसेमिया मायनर भी कहा जाता है. जब माता और पिता से थैलेसेमिया जीन सहित गुणसूत्र बच्चे को मिलता है तब उसे थैलेसेमिया मेजर तथा कुलिज अनिमिया ऐसा कहा जाता है. जब एक सामान्य व्यक्ति किसी थैलेसेमिया वाहक से शादी करती है तब उनके कुछ बच्चे थैलेसिमिया वाहक हो सकते हैं जब कि कुछ बच्चे सामान्य हो सकते हैं.

इस तरह की शादी में हर गर्भावस्था के समय 50 प्रतिशत संभावना रहती है कि उनका बच्चा थैलेसेमिया वाहक हो. उसे किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती है. लेकिन जब एक थैलेसेमिया वाहक लड़के की शादी थैलेसेमिया वाहक लड़की के साथ होती है तब हर गर्भावस्था के समय 25 प्रतिशत संभावना यह हो सकती है कि बच्चा अपने मां बाप की तरह थैलेसेमिया वाहक हो तथा 25 प्रतिशत संभावना यह हो सकती है कि बच्चा बिल्कुल सामान्य हो.

यहां एक बात कहना जरूरी है कि कई परिवारों में गलतफहमी होती है कि एक बार थैलेसेमिया मेजर बच्चा हुआ तो अगली गर्भावस्था में ऐसा बच्चा होने की संभावना नहीं.

क.बीटा थैलेसेमिया मेजर के लक्षण :

बीटा थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित बच्चा जन्म के समय सामान्य लगता है. लेकिन इस रोग के लक्षण सामान्यतः 3-

1. माता या पिता थैलेसेमिया वाहक :

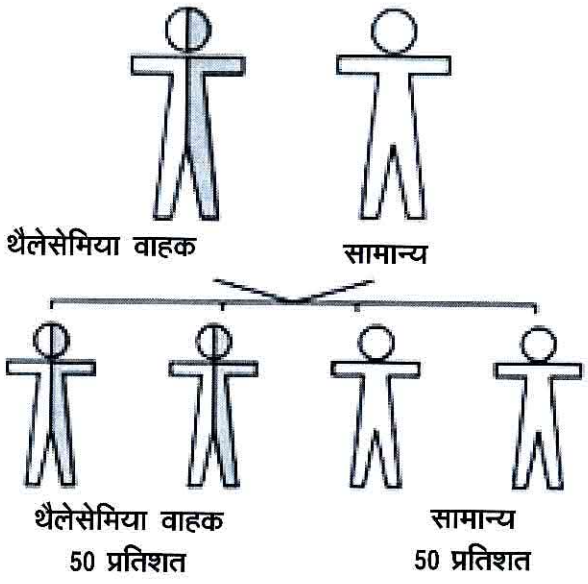

2. माता पिता दोनों थैलेसेमिया वाहक :

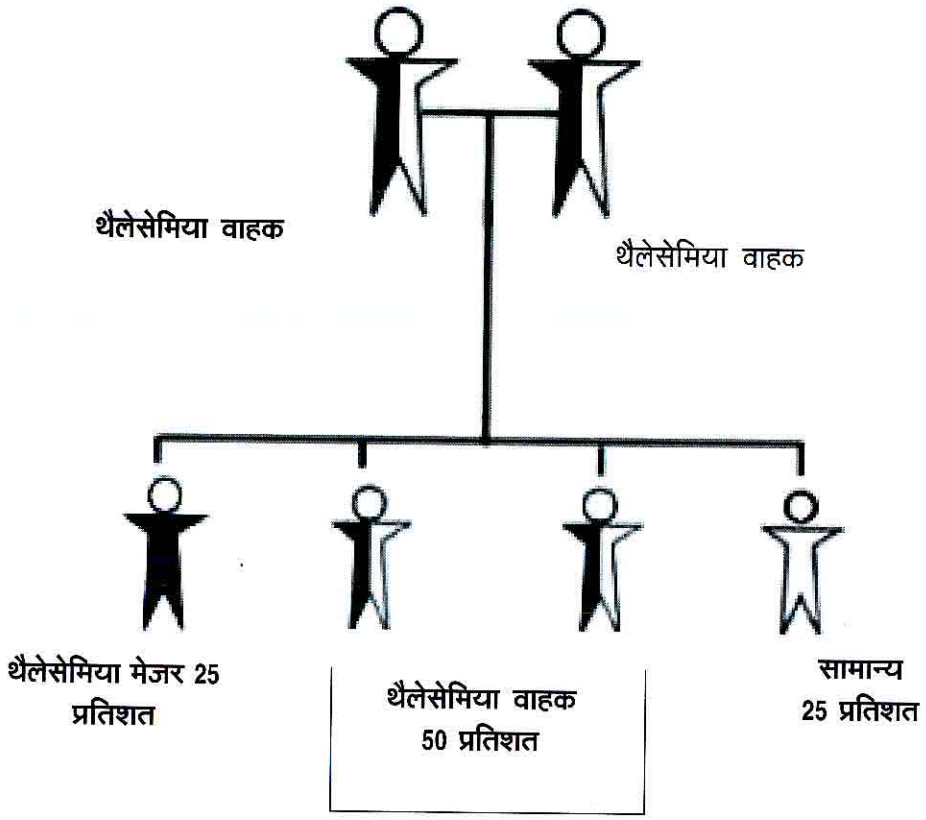

6 महीने की उम्र में शुरू होते हैं. कभी कभी दो साल की उम्र में भी शुरू होते हैं. बीटा ग्लोबिन चेन की कमी की वजह से बच्चा एडल्ट हिमोग्लोबिन पूरी मात्रा में नहीं बना सकता है. बच्चा कमजोर होता है. अच्छी तरह से सो नहीं सकता तथा खाना नहीं खा सकता. कभी कभी उसे स्वास रोग भी हो जाता है. उसके हड्डियों की असमान्य वृद्धि होती है. अगर इसका इलाज नहीं किया तो बच्चे की हालत लगातार बिगड़ती जाती है. उसके यकृत और तिल्ली का आकार बढ़ने लगता है. कभी कभी तिल्ली को निकालना पड़ता है. बच्चे के हिमोग्लोबिन की मात्रा गिरती जाती है और कुछ ही समय में बच्चे की मौत हो जाती है.

ड. बीटा थैलेसेमिया का इलाज तथा उपचार :

बोनमॅरो का रोपण यह एक मात्र इलाज बीटा थैलेसेमिया से मुक्ति पाने के लिए है. अपने देश में इसकी सुविधा सिर्फ कुछ ही केंद्रों में है. इसके लिए मरीज को अनुकूल बोन मैरो दान करनेवाला प्रायः उस बच्चे का भाई या बहन होना चाहिए. लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि यह इलाज काफी महंगा है, जो करीब 8-10 लाख रूपये तक है. इसके बावजूद बोनमैरो रोपण करने पर कभी कभी बच्चे के शरीर द्वारा उसे अस्वीकार करने की संभावना रहती है. इसका मतलब बोन मैरो रोपण के बावजूद यह बच्चा बीटा थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित ही रह जाता है.

इससे पता चलता है कि कोई औसत भारतीय परिवार इतना भुगतान बीटा थैलेसेमिया मेजर के इलाज के लिए नहीं दे सकता. उनके पास उस बच्चे का उपचार करने का पर्याय ही उपलब्ध रहता है.

उपचार के लिए बच्चे को 6 से 12 महीने बाद हर महीने खून चढाना पडता है. कभी कभी 15 दिनों में उसे खून चढ़ाना पड़ सकता है. लगातार खून चढ़ाते रहने से लौह की मात्रा ज्यादा हो जाती है जिससे हृदय और यकृत को नुकसान हो सकता है. इस जादा लोहे की मात्रा को कम करने के लिए बच्चे को एक 'डेसफराल' नाम की दवाई दी

आकृति 1 : बीटा थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित बच्चे हड्डी की असामान्य वृद्धि

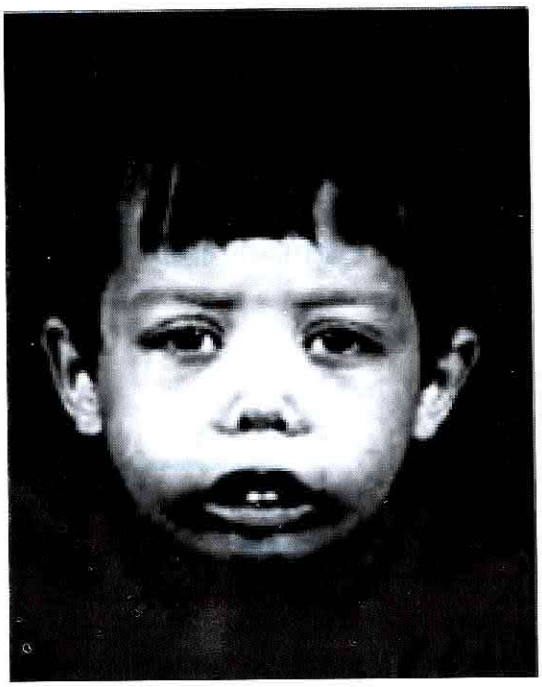

आकृति 2 : बीटा थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित बच्चे के यकृत और तिल्ली का बढ़ा हुआ आकार.

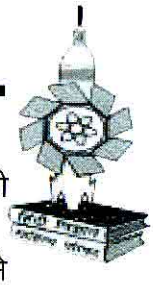

जाती थी. इसे चमड़ी के अंदर एक इंजेक्शन तथा छोटे पम्प द्वारा 12 से 14 घंटे तक के लिए दिया जाता था.इसलिए बच्चे को अस्पताल तथा केअर सेंटर में रहना जरूरी होता था. इससे छुटकारा पाने के लिए आजकल 'एल1' या 'केलफर' नाम की दवाई दी जाती है, जो खायी जा सकती है.

इन दोनों उपचारों की लागत सालाना 1.5 से 2.0 लाख रूपये होती है इसका भुगतान करना भी एक औसत परिवार की सीमा से परे है. इससे अलावा पूरे परिवार का जीवन कष्टमय होता है. पूरे परिवार का ध्यान उस बीमार बच्चे की और केंद्रित हो जाता है. अपने दूसरे बच्चे तथा परिवार के अन्य सदस्यों के पास ध्यान देना मुश्किल हो जाता है. पूरे परिवार का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है. इसलिए थैलेसिमिया मेजर बच्चे को इलाज करना तथा उपचार करना बहुत मुश्किल होता है.

लेकिन इस रोग को रोका जा सकता है.

इ.बीटा थैलेसेमिया का अपने देश में परिमाण :

अपने देश में विभिन्न जाति और धर्म के करीब 120 करोड़ लोग रहते है. इसमें 3 से 4 प्रतिशत लोग बीटा थैलेसिमिया वाहक होते हैं. अपने देश में अलग अलग राज्य के रितीरिवाज अलग-अलग होते हैं. आज अंतरजातीय, आंर्तधर्मिय, अंतर राज्य विवाह होते है. फिर भी ज्यादातर लोग अपनी ही जाति में से लडका या लडकी के साथ शादी करना पसंद करते हैं.

इसलिए अपने देश में हर जाति के अलग अलग जीन पूल (Gene Pool) बने हैं. यही कारण है कि लगभग जनसंख्या के 3 से 4 प्रतिशत व्यक्ति बीटा थैलेसेमिया वाहक होने के बावजूद सिंधी, जैन, पंजाबी, मुस्लिम, कायस्थ इन लोगो में 5 से 10 प्रतिशत व्यक्ति थैलेसेमिया वाहक हो सकते है.

एक अनुमान है कि अपने देश में हर साल 10000 से 12000 बच्चे बीटा थैलेसेमिया रोग के साथ जन्म लेते हैं. सन 2011 की जनगणनानुसार अपने देश की जनसंख्या 1,210,193,422 है उनमें करीब 4,84,07,736 लोग थैलेसेमिया के वाहक है. (अपने देश में औसत 3-4 प्रतिशत लोग थैलेसेमिया के वाहक के हिसाब से)

ई. बीटा थैलेसेमिया वाहक (बीटा थैलेसेमिया मायनर)

बीटा थैलेसेमिया वाहक आदमी पूर्णतः स्वस्थ और लक्षणमुक्त होता है. इन लोगों में हिमोग्लोबिन की मात्रा थोडी कम रहती है. अमिताभ बच्चन मशहूर अभिनेता, पॅट सॅम्प्रस अमरीका के मशहूर टेनिस खिलाड़ी, ज़िनादेन जिदान फ्रान्स के जानेमाने फुटबॉल खिलाडी ये दिग्गज बीटा थैलेसेमिया के वाहक है.

इन्हें अपनी झिंदगी में बीटा थैलेसेमिया के वाहक होने की वजह से कोई तकलीफ उठानी नही पड़ी.

बीटा थैलेसेमिया का वाहक पहचानने के लिए व्यक्ति के खून का परीक्षण करना जरूरी है. यह परीक्षण में रक्त गणना तथा हिमोग्लोबिन ए2 का मूल्यांकन करना होता है. इन व्यक्तियों में हिमोग्लोबिन ए2 की मात्रा सामान्य मात्रा की तुलना में ज्यादा (>3.5%) होती है. यह एक मात्र निरीक्षण से थैलेसेमिया वाहक को पहचाना जा सकता है.

थैलेसेमिया वाहक व्यक्ति स्वस्थ होने के कारण उन्हें समाज में ढूंढना बहुत मुश्किल है. जब दो वाहकों की शादी हो जाती है और दुर्भाग्य से जब उनके पहले ही बच्चे को थैलेसेमिया मेजर होता है तब उन्हें पता चलता है कि वे दोनों वाहक हैं. इसलिए थैलेसेमिया को रोकने के लिए इन वाहकों को समाज में ढूंढना और उनके मन में इस रोग के बारे में जागरूकता निर्माण करना बड़ा महत्वपूर्ण काम है क्योंकि हमारा अंतिम लक्ष्य तक यही रहेगा कि अपने देश में थैलेसेमिया मेजर बच्चे को पैदा होने से रोकना.

उ.प्रसूतिपूर्व निदान :

थैलेसेमिया को रोकने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है. स्त्री के पूरी गर्भावस्था में यह निदान दो बार किया जा सकता है. पहला निदान गर्भावस्था की शुरूआती समय में 9 से 12 सप्ताह में हो सकता है.

इसमें Chorionie villus (जिससे आगे बच्चा तैयार होता है) का छोटा टुकडा अल्ट्रासाऊंड गाईडन्स से निकाला जाता है. इससे डीएनए बनाकर बीटाग्लोबिन जीन का पता किया जाता है. अगर इस परीक्षण से पता चलता है कि बच्चा बीटा थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित है तो माता पिता को गर्भपात करने की सलाह दी जाती है. इस परीक्षण को 8 से 10 दिन लगते हैं.

दूसरे परीक्षण में प्रसूतिपूर्व शिशु की जांच गर्भ के 18 से 20 सप्ताह के बीच की जा सकती है. इस परीक्षण में अल्ट्रासाऊंड गाईडंस से नाभि नाड़ी से शिशु का का खून एक सुई द्वारा निकाला जाता है. खून का परीक्षण करने के बाद वह शिशु थैलेसेमिया मेजर से पीड़ित है या नहीं है इसका पता लगता है. इस परीक्षण में माता पिता के खून का परीक्षण करना जरूरी नहीं है. लेकिन गर्भावस्था के इस समय में गर्भपात करना आसान नहीं होता.

ऊ. जागरूकता :

थैलेसेमिया के बारे में अपने समाज में जागरूकता निर्माण करना जरूरी है. थैलेसिमिया रोकने के कार्यक्रम में थैलेसिमिया के वाहक को ढूंढना एक महत्वपूर्ण कदम है.

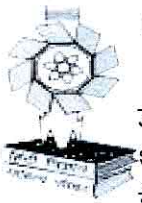

उन्हें ढूंढने के लिए अपने देश की पूरी जनता का थैलेसेमिया वाहक का परीक्षण करना नामुमकीन है. इसलिए समाज के विशिष्ट गटों का सर्वेक्षण करना जरूरी है. जैसा कि पहले बताया कि कई जातियों में वाहक का प्रमाण 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत है. इनमें शादी करते समय दो वाहक एक साथ आने की संभावना ज्यादा होती है. ऐसी जातियों में वाहक ढूंढने के लिए सर्वेक्षण करना तथा उनमें जागरूकता निर्माण करना जरूरी है.

सेकंडरी स्कूल तथा कॉलेज के बच्चे जो 7-8 साल बाद शादी करनेवाले होते है उनमें भी यह सर्वेक्षण करना तथा वाहकों में जागरूकता निर्माण करना जरूरी है.

हमारा एक अनुभव है कि स्कूल तथा कॉलेज में वाहकों में जागरूकता निर्माण करने के बावजूद जब उनकी शादी घरवाले तय करते है, तब बहुत थैलेसेमिया वाहक का रिपोर्ट छुपाया जाता है, क्योंकि उन्हें डर लगता है कि थैलेसेमिया का वाहक होने से उन्हें कोई अच्छा लडका या लडकी स्वीकार नहीं करेगे. लेकिन जब बिना जानकारी के दो वाहकों की शादी होती है और वे थैलेसेमिया मेजर बच्चे को जन्म देते है तब दुसरी गर्भावस्था में प्रसूतिपूर्व निदान के लिए दोनों हमारे पास आते है. इससे 'थैलेसेमिया मेजर बच्चा पैदा नहीं हो'. यह लक्ष्य जरूर कामयाब होता है.

जब कोई स्त्री गर्भावस्था में अपना नाम दर्ज करने के लिए अस्पताल आती है, तब उसकी थैलेसेमिया वाहक की लिए जांच करना जरूरी है. क्योंकि यह स्त्री 3-4 महीने बाद 'थैलेसेमिया मेजर' बच्चे को जनम देने की संभावना रहती है. अगर वह स्त्री वाहक है तो उसके पति की जांच करना जरूरी है और अगर पति भी वाहक है तो उसके पेट के बच्चे का थैलेसेमिया के लिए प्रसूति पूर्व निदान करना जरूरी है ताकि थैलेसेमिया मेजर बच्चे को पैदा होने से रोका जा सकता है. इसमें एक कठिनाई हम महसूस कर रहे हैं कि अपने देश में विवाहित स्त्री 4-5 महीने की गर्भावस्था के बाद अपना नाम अस्पताल में दर्ज कराती है और अपनी प्रसूति के लिए वह अपने माता पिता के घर जाती है. इसलिए अगर वह थैलेसेमिया की वाहक निकली तो उनके पति को बुलाकर जांच करने तक उनकी गर्भावस्था 24 हप्ते तक बढ़ जाती है और तभी प्रसूतिपूर्व निदान तथा आवश्यक है तो गर्भपात करना नामुमकिन हो जाता है.

जिन परिवारों में थैलेसेमिया मेजर बच्चा है, तो उसे बहुत आर्थिक तथा मानसकि कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. थैलेसेमिया यह अनुवांशिक बीमारी होने के कारण इस बच्चे के माता पिता के भाई बहन तथा उनके परिवार में थैलेसेमिया के वाहक होने की संभावना जादा है. ये सभी लोग थैलेसेमिया के बारे में जागरूक रहते है और थॅलेसेमिया वाहक की जांच करने के लिए तुरंत तैयार होते हैं. इस प्रकार की रणनीति से समाज में ज्यादा वाहक ढूंढ सकते है.

सायप्रस तथा ग्रीस में 1970-1980 की दशक में 'थैलेसेमिया मेजर' बच्चे ज्यादा पैदा होते थे. इन बच्चों की पैदाइश कम करने के लिए तथा थैलेसेमिया को रोकने के लिए वहां की सरकार ने एक नयी रणनीति अपनायी.

ख्रिश्चन समाज में शादी के लिए लोग चर्च में फादर के पास जाते हैं. वहां शादी के लिए आये लड़का और लड़की को अगर थैलेसेमिया के लिए प्रसूतिपूर्व निदान के बारे में सलाह देते थे. इस रणनीति का प्रभाव आज 25-30 साल बाद दिखाई दे रहा है, जब वहां थैलेसेमिया मेजर के साथ बच्चे बिलकुल पैदा नहीं होते. लेकिन इसी तरह अपने देश में रणनीति अपनाना बहुत मुश्किल है क्योंकि अपने देश में विविध राज्यों में विविध धर्म तथा जाति के लोग रहते है. गुजरात में जैन, मुस्लिम, प्रजापति, कच्छी, भानुशाली इन जातियों के लोग रहते है जिनमें 5 से 15 प्रतिशत व्यक्ति थॅलेसेमिया वाहक होने की संभावना है.

गुजरात सरकार ने थैलेसेमिया रोकने के कार्य कम में अपने राज्य के सभी लोगों में थॅलेसेमिया के बारे में जागरूकता पैदा होने के लिए अमिताभ बच्चन को ब्रांड ॲम्बेसेडर बनाया है वह थैलेसेमिया वाहक के लिए परीक्षण कराने के लिए अखबार तथा टेलिवीजन पर लोगों से अपिल करती है. इसी तरह गुजरात में RTO में Driving Licence देते समय तथा कॉलेज में दाखिल होते समय थैलेसेमिया के वाहक के लिए परीक्षण करवाना अनिवार्य है. इस रणनीति की वजह से ज्यादा से ज्यादा लोग थैलेसेमिया वाहक परीक्षण करवा लेते हैं.

इसी तरह हर राज्य में थैलेसेमिया वाहक के सर्वेक्षण के लिए अपनी अपनी रणनीति बननी चाहिए. यहां एक बात कहना जरूरी है कि हिमोग्लोबिन ए2 के मूल्यांकन करने की सुविधा अपने देश में जिल्हा स्तर पर सभी जिला अस्पताल में तथा बड़े शहरों में अधिकतम लॅबोरेटरीज में होना जरूरी है, क्योकि लोगो में जागरूकता पैदा करने के बाद अगर यह सुविधा उपलब्ध नहीं है तो लोग हिमोग्लोबिन ए2 का मूल्यांकन नहीं करवा सकते. इसलिए जागरूकता पैदा करने के साथ यह सुविधा अधिकतम शहरों में करना जरूरी है.

तो चले हम सभी थैलेसेमिया के वाहक के लिए जांच करवा लें और पोलिओ तथा small pox जैसे इस रोग को भी अपने देश से भगा दें.

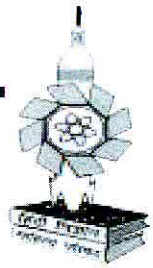

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2013 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख

एन्टीबायोटिक्स का विकल्प-बेक्टीरियोफेज

डा.सविता गुप्ता
डी2/78, विनीत खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ, यू.पी.226010
Email - savitagupta5884@gmail.com

जीवाणु एक कोशिकीय, अति-सूक्ष्म जीव हैं जो नग्न नेत्रों से दिखाई नहीं देते हैं. यह पृथ्वी पर सभी परिस्थितियों में जीवित रहते हैं तथा अत्यधिक ठंढ़े एवं गर्म तापमान को सहने की क्षमता रखते हैं. यह अम्लीय तथा क्षारीय भूमि में भी रह सकते हैं. जल, वायु तथा मृदा की एक सूक्ष्म इकाई में जीवाणुओं की संख्या करोड़ों में हो सकती है. यह मनुष्यों, पशु, पक्षी, समस्त थलचर एवं जलचर में विद्यमान रहते हैं तथा मृतोपजीवी, सहजीवी एवं परजीवी हो सकते हैं.

पौधों में जीवाणु जनित रोगों के कारण आर्थिक हानि होती है, जैसे धान का झुलसा रोग, आलू का झुलसा एवं कंद सड़न, नींबू वर्गीय पौधों में केंकर, सिट्रस ग्रीनिंग, किवी फलों का कॅकर, कपास का झुलसा रोग, गन्ने का रेटून स्टंट आदि कुछ प्रमुख रोग है. मनुष्यों में कॉलरा, पेचिश, प्लेग, कोढ़, टायफाइड टिटनस, टी.बी. आदि मुख्य बीमारियां हैं.

जीवाणु जनित पौधों के रोगों के प्रबंधन के लिए फसल पर एन्टीबायोटिक्स या कॉपर आधारित रसायनों का छिड़काव किया जाता है. इनके निरंतर प्रयोग से भूमि के कॉपर की मात्रा जहरीले स्तर तक बढ़ जाती है तथा एन्टीबायोटिक्स के लिए जीवाणु में प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है. जेन्थोमोनास एवं स्यूडोमोनास जीवाणु में कॉपर के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो गई है. रसायनों के अवशेष जल, भूमि तथा पौधों में विद्यमान रहते हैं. इन सभी समस्याओं के निदान के लिए बेक्टरीयोफेज एक सही विकल्प है.

बेक्टरीयोफेज जीवाणु भक्षी विषाणु है जो जीवाणु के ऊपर पूर्णतया परजीवी होते हैं और इनकी जीवन चक्र पोषित (होस्ट) की कोशिका में ही पूरा होता है. यह पोषित विशिष्ट होते हैं अर्थात सभी फेज एक ही प्रकार के जीवाणु के ऊपर परजीवी नहीं होते हैं. फेज विभिन्न आकार, माप एवं संरचना के होते हैं. फेज विषाणु है अतः यह न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन के बने होते हैं. इनमें एक ही प्रकार का न्यूक्लिक अम्ल पाया जाता है - राइबोन्यूक्लिक अम्ल (R NA) या डी ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल (DNA). न्यूक्लिक अम्ल भी इकहरे या दुहरे हो सकते हैं.

बेक्टरीयोफेज जीवाणु रोगों के उपचार में प्रभावी हैं. यह पर्यावरण सुरक्षित है और जीवाणु को नष्ट करके फसल की उपज बढ़ाने में सक्षम हैं. फसल पर इसका प्रयोग करने से मनुष्यों, पशुओं, पौधों, कीटों एवं अन्य सूक्ष्म जीवों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है. यह एन्टीबायोटिक या कॉपर प्रतिरोधी जीवाणुओं को भी नष्ट करने में सक्षम होता है.

इतिहास - प्राचीन काल से ही यह मान्यता रही है कि नदियों के जल में रोगों से लड़ने की क्षमता होती है. सन् 1896 में इ.एच.हेन्किन ने बताया कि गंगा और यमुना के जल में कॉलरा बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं के विरूद्ध क्रिया करने वाला तत्व है जो पार्सलीन की महीन छलनी से निकल जाता है, जिसमें से जीवाणु नहीं निकल पाते हैं. बैक्टरीयोफेज की खोज लगभग एक ही साथ दो वैज्ञानिकों ने की. सन् 1915 में अंग्रेज बेक्टरीयोलोजिस्ट एफ.टवार्ट तथा सन् 1917 में फ्रेंच केनाडियन बेक्टरीयोलोजिस्ट एफ.डी.हेरेले ने जीवाणु रोधी न दिखाई देने वाले, तत्व की खोज की. इन लोगों ने देखा कि दस्त पैदा करने वाले जीवाणु सीवेज के छने हुए पानी से क्रिया करने पर नष्ट हो जाते हैं. इस खोज के तुरंत बाद फेज का प्रयोग जीवाणु जनित रोगों जैसे कॉलरा, ब्यूबोनिक प्लेग आदि के उपचार में किया गया. बीसवीं शाताब्दी में प्रयोगशाला में हुई खोजों में बेक्टरीयोफेज का प्रमुख स्थान रहा है.

डी.हेरेले ने फेज के चिकित्सीय गुणों का परखने के लिए इसका प्रयोग जीवाणु ग्रसित गाय और मुर्गी पर किया और सफल हुए. इसके पश्चात मनुष्यों पर प्रयोग किये गये. सन् 1923 में एलीवा इंस्टीट्यूट, तिबइल्सी, जार्जिया, में खुलने के बाद इसका प्रयोग चिकित्सा में बढ़ गया. 1940 के दशक में अमेरिका में एलीलिली फार्मास्युटिकल कंपनी ने फेज थिरेपी को उद्योग का रूप दिया. दूसरे विश्व युद्ध के समय सोवियत यूनियन में गेंगरीन और पेचिश से पीड़ित सैनिकों के उपचार के लिए फेज का प्रयोग किया गया. 1950 के दशक में एन्टीबायोटिक के उत्पादन के पश्चात फेज थिरेपी लगभग बंद हो गयी थी.

1934 में एम.ग्लेसिंगर ने खोज की कि फेज प्रोटीन एवं डी.एन.ए. की बनी होती है. अल्फ्रेड डे हर्शे एवं मार्था चेस ने 1952 में एक प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि T2 बेक्टरीयोफेज का अनुवांशिक तत्व डी.एन.ए. है. कुछ फेज जैसे लेम्बडा, एम यू एवं एम 13 का प्रयोग डी.एन.ए. के पुनः संयोजन में किया गया. 1969 में मेक्स डेल ब्रुक, अल्फ्रेड हर्शे एवं एस.लूरिया को उनकी 'विषाणु रेप्लीकेशन एवं जेनेटिक स्ट्रकचर' खोज के लिए नोबल पुरस्कार 'फिजियोलोजी एवं मेडीसिन' वर्ग में दिया गया.

फेडरिक सेन्गर एवं उनके सहयोगियों ने 1977 में फेज φX174 के सम्पूर्ण न्यूक्लियोटाईड सीक्वेन्स का पता लगाया. यह अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि यह प्रथम वाइरॉन था जिसके संपूर्ण न्यूक्लियोटाईड का पता चला.

डोमोटर एवं उनके सहयोगियों (अक्टूबर, 2012) ने इरवीनिया अमाइलोवारा के फेज **Phi EaH2** के संपूर्ण जीनेमिक सीक्वेंस की खोज की. यह जीवाणु रोसेसी फेमिली के पौधों में 'फायर ब्लाइट' नामक घातक बीमारी पैदा करता है जिससे

तालिका -1

मॉडल बेक्टीरीयो फेज

निम्नलिखित फेज के ऊपर मुख्यतः शोध की गई है -

1. लेम्बडा फेज (λ फेज) - लाइसीजेन (λफेज सबसे महत्वपूर्ण है, एवं सबसे अधिक जेनेटिक शोध में प्रयोग की गयी है.
2. T2 फेज, T4 फेज (169Kbp जीनो म, 200nm) लंबा
3. T7 फेज, T12 फेज, R17 फेज, M13 फेज
4. MS2 फेज
5. G4 फेज (23-25 nm माप)
6. P1 फेज
7. एन्टरोबेल्टीरिया फेज P2
8. P4 फेज
9. Phi x 174 फेज
10. N4 फेज
11. स्यूडोमोनास फेज ϕ 6
12. ϕ 29 फेज
13. 186 फेज

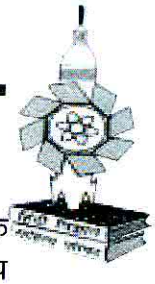

पौधे झुलस जाते हैं. यह फेज प्रयोगशाला में इरवीनिया अमाइलोवारा जीवाणु को नष्ट करते हैं एवं खेत में प्रयोग करने पर जीवाणु के प्राकृतिक संक्रमण में कमी लाते हैं. यह फेज हंगरी में मृदा के नमूनों से मिला था. इसका जीनोमिक सीक्वेंस (Phi EaH2) 243, 050 bpलंबा है तथा G+C तत्व 51.28 मोल फीसदी है. इसके पहले इरवीनिया अमाइलोवारा के विरूद्ध कोई भी फेज इतने लंबे जीनोम की नहीं मिली है. यह जीनोमिक सीक्वेंस जीन बैंक में एक्सेशन न.JX316028 में जमा किया गया है.

सर्वप्रथम वर्णित फेज टाईप 1 है तथा तत्पश्चात क्रम से नंबर देते हुए टाईप 7 नाम दिया गया है. 'Tसम' फेज T2, T4 एवं T6 को विषाणु के गुणन की प्रक्रिया को समझने के लिए मॉडल सिस्टम की तरह प्रयोग किया गया है.

(तालिका-1)

फेज की संरचना - यह विभिन्न एवं सरचना के होते हैं. आम तौर पर इनकी संरचना रॉकेट की तरह होती है. T4 सबसे बड़ा फेज है यह लगभग 200 nm लंबा और 80-100nm चौड़ा होता है जबकि अन्य फेज इससे छोटे होते हैं. (चित्र-1) मुख्यतः फेज का माप 24-200 nm होता है तथा इनका शरीर दो भागों में बंटा होता है -

1. **केप्सिड या हेड** - सभी फेज में एक हेड या सिर होता है जिसका आकार एवं माप विभिन्न फेज में भिन्न होता है. कुछ फेज में हेड आइकोसाहेड्रल होता है अन्य में धागेनुमा हो सकता है. यह एक या अधिक अलग-अलग प्रोटीन की अनुकृति से बना होता है. हेड के अंदर न्यूक्लिक अम्ल पाया जाता है, जिसको यह सुरक्षित रखने का कार्य करता है.

2. **टेल** - अधिकतर फेज में टेल या पूंछ पायी जाती है जो कि हेड से जुड़ी रहती है. यह एक खोखली नली जैसी संरचना होती है जिसमें से होकर न्यूक्लिक अम्ल संक्रमण के समय जीवाणु कोशिका में जाता है. इसकी लम्बाई भी प्रत्येक फेज में अलग-अलग होती है और कुछ फेज टेल रहित होती हैं. गूढ़ संरचना वाली फेज उदाहरण T4 फेज में टेल के चारों ओर एक संकुचन शील परत पायी जाती है जोकि जीवाणु के संक्रमण के समय सिकुड़ती है. T4 फेज में टेल के अंत में एक आधारीय (बेस) प्लेट पायी जाती है तथा एक या अधिक टेल फाइबर इससे जुड़े रहते हैं. आधारीय प्लेट तथा टेल फाइबर फेज की जीवाणु की सतह पर

तालिका - 2

फेज का वर्गीकरण

आर्डर	फेमिली	फेज संरचना	न्यूक्लिक अम्ल	उदाहरण फेज
	म्योविरिडी	बाह्यपर्त रहित, संकुचनशील टेल	लंबा, दुहरा, डी,एन.ए.	λ 4, MU, PBSX, P1 फ्यूना लाइक, P2, 13, BcеP1, BcеP43. BcеP78
कोडोवाइरेल्स	सिफोविरिडी	बाह्य पर्त रहित, असंकुचनशील टेल (लम्बे)	लंबा, दुहरा, डी.एन.ए.	λ फेज T5, LS, Phi, C2, HK97, λ 15
	पोडोविरिडी	बाह्य पर्त रहित, असंकुचन शील टेल (छोटे)	लंबा, दुहरा, डी.एन.ए.	T7 फेज, T3, P22, P37
लिगामेन वाइरेल्स	लिपोथोरिक्सविरिडी	बाह्य पर्त सहित, छड़के आकार के	लंबा, दुहरा डी.एन.ए.	एसिडीएनस फिलामेन्टस वाइरस-1
	रुडीविरिडी	बाह्य पर्तरहित, छड़ के आकार के	लंबा, दुहरा, डी.एन.ए.	सल्फोलोबस आइलेन्डीक वाइरस - 1
आर्डर अनिश्चित	लेवीविरिडी	बाह्य पर्त रहित, आइसोमेट्रिक	लंबा इकहरा, आर.एन.ए.	MS2, Qβ
	माइक्रोविरिडी	बाह्य पर्त रहित, आइसोमेट्रिक	गोल,इकहरा, डी.एन.ए.	ϕ X174

(आई.सी.टी.बी.)

चित्र-1

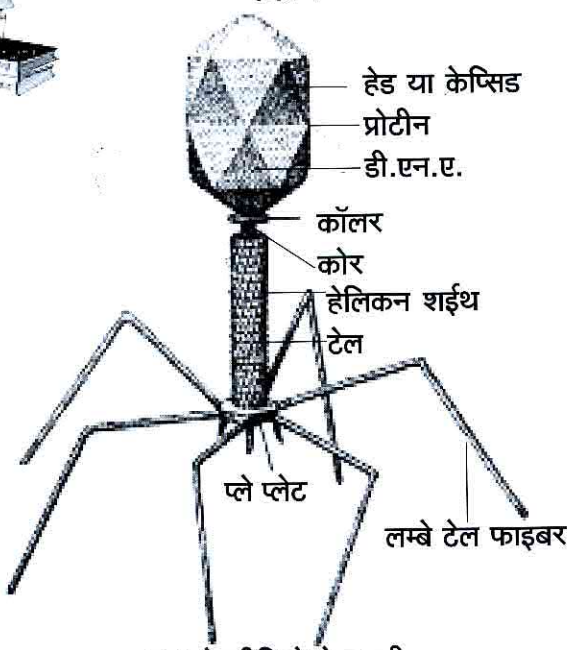

T-4 बेक्टीरियो फेज की संरचना

अवशोषण से सहायता करते हैं. सभी फेज में प्लेट तथा फाइबर नहीं पाए जाते हैं. उनके स्थान पर अन्य संरचनाएं जीवाणु की सतह से बंधन में सहायता करती हैं.

फेज का वर्गीकरण - फेज का वर्गीकरण 'इन्टरनेशनल कमेटी ऑन टेक्सोनोमी ऑफ वाइरसस' के द्वारा वाइरस की संरचना एवं न्यूक्लिक अम्ल के आधार पर किया गया है. बेक्टरीयोफेज को 19 फेमिली में बांटा गया है. आर्डर कोडोवाइरेल्स में 3 फेमिली हैं (म्योविरिडी, सिफोविरिडी एवं पोडोविरिडी) जिनमें लम्बे, दुहरे डी.एन.ए. एवं टेल युक्त फेज हैं जिन पर मुख्यतः (95 फीसदी) शोध की गयी हैं. (तालिका-2)

फेज का जीवन चक्र - जीवन चक्र के आधार पर फेज को 2 भागों में बांटा गया है -

अ. लाइटिक या विरूलेन्ट फेज

ब. लाइसोजेनिक या टेम्परेट फेज

लाइटिक फेज - के जीवन में चार प्रमुख अवस्थाएं होती हैं (चित्र-2)

चित्र-2

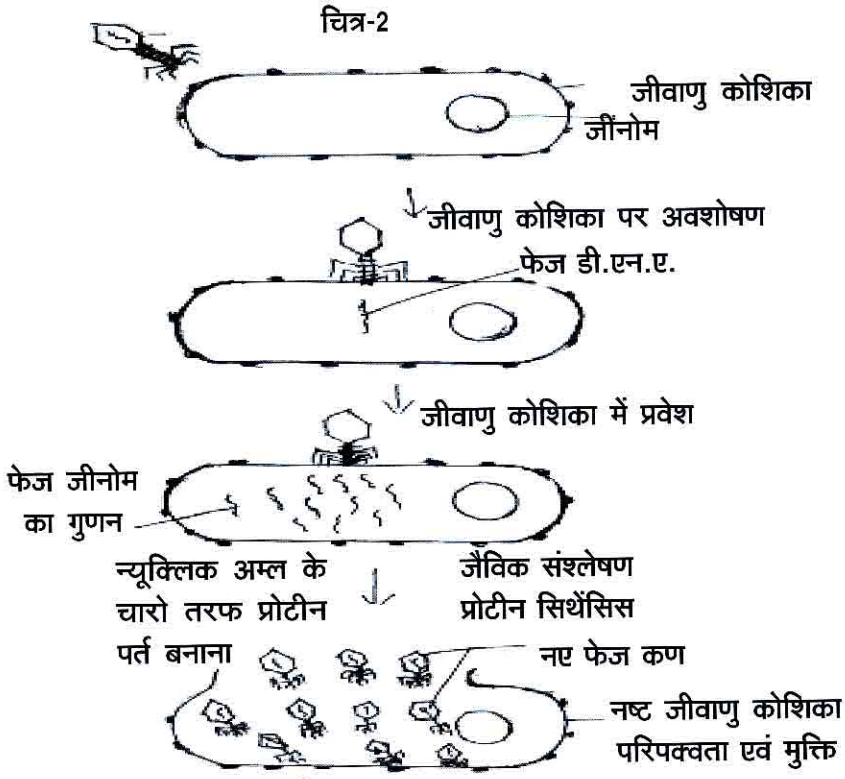

T- 4 बक्टीरियो फेज का लाइटिक चक्र

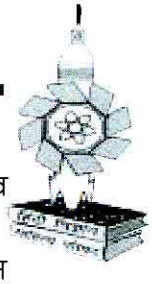

1. अवशोषण - यह जीवन चक्र की पहली अवस्था है जहां फेज अपने टेल फाइबर द्वारा जीवाणु की कोशिका की सतह से जुड़ता है.

2. जीवाणु में प्रवेश करना - इस अवस्था में फेज अपने टेल से जीवाणु कोशिका में अनुवांशिक पदार्थ को प्रविष्ट कराता है.

3. जैविक संश्लेषण - इस अवस्था में फेज का डी.एन.ए.पोषित की कोशिका का प्रयोग करके अपनी अनुकृति बनाने लगता है.

4. परिपक्वता एवं मुक्ति - प्रोटीन एवं डी.एन.ए. बनने के बाद फेज के कण का निर्माण हो जाता है और यह कोशिका को नष्ट कर के बाहर निकल आते हैं. उदाहरण T फेज, T1 से T7 तक लाइटकि फेज हैं क्योंकि यह अपने पोषित जैसे ई.कोलाई की कोशिका को नष्ट करके ही बाहर निकलते हैं.

लाइसोजेनिक फेज - लाइसोजीनी को समझने के लिए लम्बडा फेज को मॉडन के रूप में प्रयोग किया गया है. इस फेज का जीवन चक्र लाइटिक फेज से भिन्न होता है. यहां फेज का डी.एन.ए. जीवाणु के डी.एन.ए. से जुड़ जाता है इस अवस्था को प्रोफेज कहते हैं. (चित्र-3क). इस स्थिति में पोषित की कोशिका सामान्य रूप से विभाजित होती रहती है और फेज का डी.एन.ए. कोशिका के डी.एन.ए. के साथ ही विभाजित होकर नई कोशिका में जाता है. (चित्र-3ख) यह प्रक्रिया लंबे समय तक चलती रहती है. किसी समय फेज का डी.एन.ए. जीवाणु के डी.एन.ए. से पृथक हो जाता है तब यह पुनः लाइटिक फेज की तरह कार्य करने लगता है. (चित्र-3ग) फेज नए डी.एन.ए. एवं प्रोटीन बनाने लगती है जो जुड़ कर नए वायरान कण बनाते हैं और जीवाणु की कोशिका को नष्ट करके बाहर निकल आते हैं.

फेज के जीवन चक्र की महत्वपूर्ण जैव रासायनिक क्रियाएं

(अ) लाइटिक फेज का जीवन चक्र :-

1. जीवाणु की सतह पर अवशोषण :- जीवाणु की कोशिका में प्रवेश करने के लिए सर्वप्रथम फेज जीवाणु की सतह पर स्थित विशेष रिसेप्टर से जुड़ती है. यह रिसेप्टर लिपोपॉलीसेकराइड, टिकोइक एसिड, प्रोटीन या जीवाणु की सतह पर स्थित विशेष रचनाएं पिली या फ्लैजला हो सकते हैं. इस विशिष्ट जुड़ाव का अर्थ है कि फेज कुछ विशेष जीवाणु जिनमें यह रिसेप्टर पाए जाते हैं उन्हीं से जुड़ सकता है. फेज विषाणु होने के कारण स्वयं बिना किसी माध्यम के नहीं घूम सकता है. उसे किसी माध्यम की आवश्यकता होती है. जब यह किसी द्रव में होते हैं तब सही रिसेप्टर के संपर्क में आने पर ही इनका अवशोषण संभव होता है.

2. जीवाणु में प्रवेश करना : मायोवाइरस फेज एक हाइपोडर्मिक सिरिंज की तरह ही गति करते हैं और जेनेटिक पदार्थ को जीवाणु (पोषित) की कोशिका के अन्दर पहुंचाते हैं. उचित रिसेप्टर से जुड़ने के पश्चात टेल फाइबर बेसल प्लेट को कोशिका की सतह पर ले जाते हैं इसे प्रतिवर्ती जुड़ाव (रिवर्सबिल) कहते हैं. एक बार सतह पर सही जुड़ाव हो जाने के पश्चात टेल सिकुड़ती है और अपरिवर्तनीय जुड़ाव होता है जिससे जिनेटिक पदार्थ जीवाणु भित्ति द्वारा उसकी कोशिका के अंदर चला जाता है. यह प्रतिवर्ती एवं अपरिवर्तनीय जुड़ाव शायद टेल में उपस्थित ATP की सहायता से होता है.

पोडोवाइरस में मायोवाइरस की तरह टेल शीथ (टेल पर्त) नहीं पायी जाती है अतः वह अपने छोटे, दांत की तरह, टेल फाइबर का प्रयोग करके एन्जाइम क्रिया द्वारा कोशिका भित्ति को गला देते हैं जिससे जेनेटिक पदार्थ कोशिका के अंदर चला जाता है.

3. प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल का संश्लेषण : फेज के जीवाणु की कोशिका में प्रवेश करते ही जीवाणु का राइबोसोम विषाणु के mRNA को निर्देश देकर प्रोटीन बनाने लगता है. आर.एन.ए. युक्त फेज में आर.एन.ए. रेप्लीकेज का संश्लेषण सर्वप्रथम होता है. प्रोटीन जीवाणु आर.एन.ए.पोलीमरेज को संशोधित करती है जिससे यह प्राथमिकता से विषाणु mRNA की प्रतिलिपि बनाने लगता है. जीवाणु की सामान्य प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल बनने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है और यह फेज का प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल बनाने के लिए बाध्य हो जाता है. प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल जुड़कर फेज के नए कण बनाते हैं. जीवाणु की कोशिका के विघटन में भी प्रोटीन की भूमिका होती हैं.

4. वायरान का जुड़ना एवं जीवाणु कोशिका से मुक्ति : T4 फेज में हेल्पर प्रोटीन की सहायता से नए विषाणु कणों का निर्माण होता है. सर्वप्रथम आधारीय प्लेट बनती है फिर उस पर टेल का निर्माण होता है. हेड अलग बनता है जो तुरंत टेल से जुड़ जाता है. हेड में डी.एन.ए. भरा रहता है. नए कण बनने की पूरी प्रक्रिया में 15 मिनट लगते हैं.

वायरान जीवाणु कोशिका को नष्ट करने या उसे भेद करके बाहर निकलते हैं. टेलयुक्त फेज में एन्डोलाइसिन एन्जाइम कोशिका भित्ति के पेप्टीडोग्लाइकन पर क्रिया करके उसे विघटित कर देता है जिससे वायरान मुक्त हो जाते हैं. धागे के समान पतली और लम्बी फेज, जो सबसे भिन्न होती है, वह जीवाणु कोशिका द्वारा नए वाइरस कण लगातार

बनाती रहती है. कुछ माइकोप्लाज्मा फेज में यीस्ट के समान बडिंग पायी जाती है.

(ब) लाइसोजीनी प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाएं : लेम्बडा फेज का डी.एन.ए., दूसरा, कुंडलित, रेखीय कण होता है जिसके 5' किनारों पर चोटे, इकहरे कुंटलित क्षेत्र होते हैं. संपूर्ण कण 48,490 बेस युग्मों का बना होता है तथा दोनों 5' किनारों पर 12 बेस होते हैं. यह दो इकहरे कुंडलित टुकड़े, 'स्टिकी एन्ड' होते हैं जिसे 'क्रॉस साइट' कहते हैं. यह जीवाणु के साइटोप्लाज्मा में डी.एन.ए. को गोलाकार बनाने में सहायता करते हैं. (चित्र-4) फेज का गोलाकार जीनोम लंबाई में 48502 बेस युग्मों का बना होता है. प्रोफेज अवस्था पोषित जीवाणु के क्रोमोसोम में फेज के डी.एन.ए. का रेखाकार टुकड़ा जुड़ जाने से बनती हैं.

लेम्बडा फेज की टेल असंकुचनशील होती है अर्थात अन्य फेज की भांति यह जीवाणु के संक्रमण के समय अपने डी.एन.ए.को 'दबाव' के साथ कोशिका भित्ती में नहीं पहुंचाती है. उसके स्थान पर यह एक सुनिश्चित मार्ग द्वारा पोषित को भेदती है. फेज की टेल के किनारे एक विशेष छिद्र से क्रिया करते है जिससे फेज का डी.एन.ए. पोषित की कोशिका में प्रवेश कर जाता है. लेम्बडा फेज एक निश्चित इ. कोलाई कोशिका को बांधती है टेल की नोक पर स्थित प्रोटीन इ.कोलाई की माल्टोज निर्मित बाह्य पर्त 'पोरीन' (विषेशतः L am B जीन का उत्पाद) से क्रिया करती है. पोरीन अणु' माल्टोज ओपेरान का एक भाग है. कोशिका की वाह्य भित्ति के द्वारा फेज का जीनोम अंदर भेजा जाता है. डी.एन.ए. कोशिका की अन्तः भित्ति में उपस्थित मैन्नोज परमिएज काम्पलेक्स के द्वारा गुजरता है और तुरंत 'कास साइट' का प्रयोग करके गोलाकार हो जाता है. फेज के गोलाकार डी.एन.ए. के एक विशेष स्थल तथा पोषित के क्रोमोसोम के एक विशेष स्थल के बीच पुनः संयोजन होता है जो कि फेज कोडेड एन्जाइम द्वारा उत्प्रेरित होता है जिसके परिणाम स्वरूप फेज का डी.एन.ए. पोषित के क्रोमोसोम से

चित्र-3

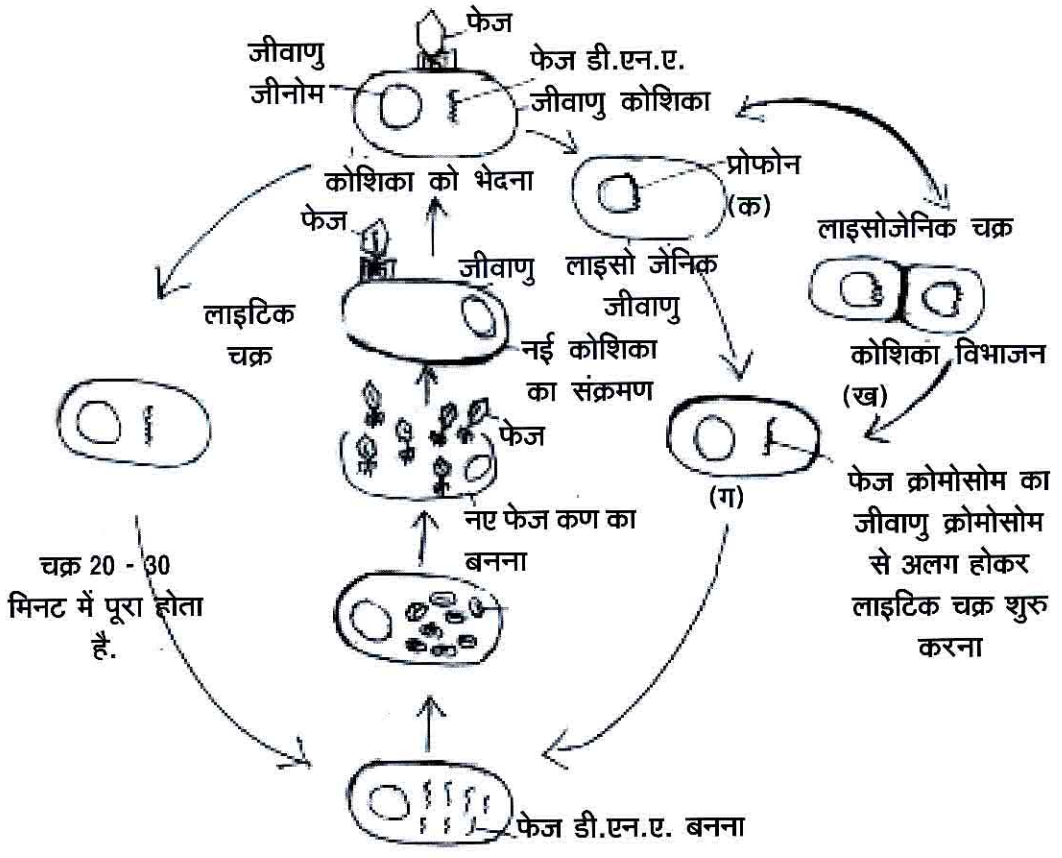

लाइटिक एवं लाइसोजेनिक चक्र

जुड़ जाता है. एक फेज कोडेड प्रोटीन जिसे रिप्रेसर कहते हैं, बनती है जो कि फेज के डी.एन.ए. के एक विशेष स्थल को बांधती है (आपरेटर कहलाती है) और रिप्रेसर जीन के अतिरिक्त फेज की लगभग सभी जीन का प्रतिलेखन (ट्रांसक्रिप्शन) बंद कर देती है. जिसके परिणा स्वरूप एक स्थिर रिप्रेस्ड फेज जीनोम पोषित के क्रोमोसोम के साथ मिश्रित हो जाता है. प्रत्येक टेम्परेट फेज केवल अपने डी.एन.ए. को रिप्रेस करती है, अन्य फेज के डी.एन.ए. को नहीं. अतः रिप्रेशन बहुत पोषित विशिष्ट होता है.

फेज की एन्टीबायोटिक्स से तुलना :

1. विषाणु एवं जीवाणु में एन्टीबायोटिक्स के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है. यह क्षमता फेज के विरुद्ध भी पैदा हो सकती है परन्तु इसे सरलता से दूर किया जा सकता है. फेज कुछ विशेष जीवाणुओं के स्ट्रेन्स को ही प्रभावित करती है अतः उन्हें नया बनाना एन्टीबायोटिक्स की तुलना में सरल है.

2. जब जीवाणु किसी विशेष फेज के लिए प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लेता है तब उसकी फेज भी उसके अनुसार बदल जाती है. जब सुपर जीवाणु पैदा होता है तब उसके विरूद्ध सुपर फेज भी उसी वातावरण में पैदा हो जाती है.

3. एन्टीबायोटिक्स की तुलना में फेज प्रभावित ऊतकों के अंदर तक जाकर वहां रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं को नष्ट करती है, जब कि एन्टीबायोटिक्स की सान्द्रता प्रभावित क्षेत्र के अंदर जाने पर कम हो जाती है तथा यह अपघटित होकर शरीर से बाहर निकल जाती है.

4. फेज में एन्टीबायोटिक्स की तरह द्वितीय प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती है.

5. पशुओं और मनुष्यों पर की गई शोधों से ज्ञात हुआ कि फेज रोग दूर करने में एन्टीबायोटिक्स से ज्यादा प्रभावी है तथा इसका शरीर पर कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता है जैसा कि एन्टीबायोटिक्स के कारण होता है. विभिन्न जीवाणुओं जैसे इ.कोलाई, एसीनीटोबेक्टर, स्यूडोमोनास तथा स्टेफाइलोकोकस ऑरीयस से ग्रस्त रोगियों पर प्रयोग किए गए एवं फेज को मुंह द्वारा, त्वचा पर, नसों से या शरीर के भीतर पहुंचाकर इसका प्रभाग जीवाणुओं पर देखा गया. फेज थेरेपी द्वारा रोग के उपचार में 80-95 प्रतिशत सफलता मिली है.

6. चूंकि फेज जीवाणुओं के शरीर में ही जीवित रह सकती है अतः यह जीवाणुओं को नष्ट करने के उपरान्त स्वयं भी नष्ट हो जाती है अतः यह रोगी के शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचाती है.

टेस्ट किट का पेटेन्ट : फेज की पहचान एवं प्रयोग के टेस्ट किट का निर्माण अमेरिका में 22 जून 1999 में किया गया (यू.एस.पेटेन्ट सं.5,914,240). यह विधि पोषित जीवाणु तथा उसके ऊपर आक्रमण करने वाली फेज पर आधारित है.

चित्र-4

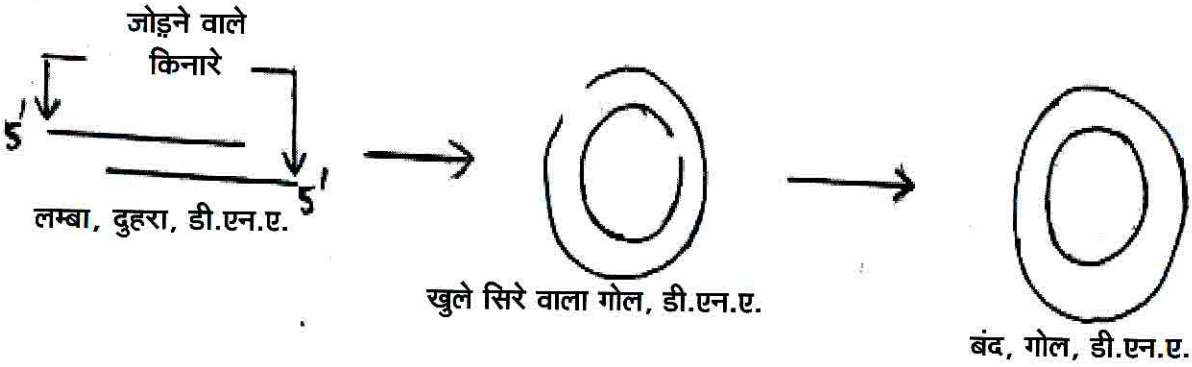

लेम्बडा फेज में लंबे, डी.एन.ए. के गोल होने की प्रक्रिया

यह विशेष किट फेज के न्यूक्लियोटाईड जैसे ATP के जीवाणु की कोशिका में प्रवेश करने के ऊपर आधारित है जहां संक्रमण के पश्चात कोशिका में फेज की प्रतिकृति बनती है व जीवाणु कोशिका को नष्ट करके बाहर निकल आती है. इस किट के द्वारा न्यूक्लियोटाईड की मात्रा नापी जाती है और उसकी तुलना संक्रमण रहित जीवाणु से की जाती है. इस विधि द्वारा फेज की पहचान, सान्द्रता, जीवाणु विशिष्ट फेज, जीवाणु का जीनस, स्पीसीज व सीरोटाईप का पता चलता है. यह कोशिका से निकलने वाले तत्वों जैसे ATP पर आधारित होता है. यह विधि ज्यादा संवेदनशील है और पुरानी विधि की तुलना में विशेष फेज को शीघ्र ही पहचान लेती है.

फेज थिरेपी :

(1) मनुष्यों एवं पशुओं को बीमारियों से लड़ना फेज का प्रमुख कार्य है.

(2) सीवेज के व्यर्थ पदार्थ वास्तव में व्यर्थ नहीं है क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं के विरूद्ध कार्य करने वाले मूल्यवान फेज का स्त्रोत हैं.

(3) फेज थिरेपी के द्वारा त्वचा प्रत्यारोपण से हुए गहरे घाव में, जलने में, त्वचा कैंसर तथा ट्रामा आदि में सुधार किया जा सकता है. इसके प्रयोग से स्यूडोमोनास एर्युजिनोसा के संक्रमण को कम किया जा सकता है.

(4) टिशु कल्चर द्वारा कोशिकाओं पर हुए कुछ प्रयोगों में फेज में ट्यूमर विरोधी तत्व भी मिले हैं.

(5) जीवाणु भोजन को उपयुक्त तापमान पर अतिशीघ्र सड़ा देते हैं. फेज का प्रयोग भोजन को ताजा रखने और सड़ने से बचाने में किया जाता है.

(6) फेज का प्रयोग पौधों के रोगों की रोकथाम के लिए किया जाता है. कुछ जीवाणुओं में एन्टीबायोटिक्स के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है तथा उन पर किसी दवा का प्रभाव नहीं पडता है. ऐसे जीवाणु फेज के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं.

(7) फेज का प्रयोग पौधों में रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं को पहचानने में भी किया जाता है.

(8) फेज थिरेपी द्वारा मेथीसिलिन प्रतिरोधी स्टेफलोकोकस ओरीयस (MSRA) जीवाणु द्वारा ग्रसित रोगियों का उपचार किया जाता है. कुटर एवं उनके सहयोगियों (2012) ने प्रयोगों द्वारा बताया कि अनेक फेज का मिश्रण (कॉकटेल) जिसमें विभिन्न जीवाणु विशिष्ट फेज हो उन्हें रोगियों को देने पर इसके विशिष्ट जीवाणु को नष्ट करने में सहायता मिलती है. जार्जिया में फेज थिरेपी अनेक वर्षों से प्रयुक्त हो रही है और एन्टीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणुओं से ग्रसित रोगियों को उपचारित कर रही है. विशेषतः फेज MSRAसंक्रमण को दूर करने में प्रभावी है.

(9) जर्नल ऑफ वुन्डकेयर (2009) में छपे एक शोध पत्र से पता चलता है कि मनुष्य के पैर के अल्सर के उपचार में विभिन्न फेज के मिश्रण (काकटेल) का प्रयोग किया गया और इस उपचार से घाव भरने में सफलता मिली. इस शोध को FDA द्वारा क्लिनिकल ट्रायल के रूप में अनुमोदित किया गया था. इसके तुरंत बाद (अगस्त 2009) जर्नल क्लिनिकल आटोलेरिन्गोलोजी में यूरोप का ट्रायल छपा जिसमें मनुष्य के कान में पुराना और घातक स्यूडोमोनास एर्युजिनोसा का संक्रमण फेज से उपचारित करने पर ठीक हो गया. फेज क्रोनिक संक्रमण के उपचार में सक्षम और सुरक्षित है.

फेज का व्यापारीकरण : पौधों के जीवाणु जनित रोगों की रोकथाम के लिए फेज का उत्पादन औद्योगिक स्तर पर करने वाली प्रथम कंपनी एग्रीफी आई.एन.सी. थी जो कि एल.ई. जेक्सन द्वारा 1989 में स्थापित की गई थी. (यू.एस.पेटेन्ट नं.4828999).

फेज थिरेपी को सफलतापूर्वक संसाधित खाद्य एवं संरक्षित भोजन के क्षेत्र में इन्ट्रालिटिक्स एवं मिकरीओस फूट सेफ्टी (पूर्ववत ई.बी.आई.फूड सेफ्टी) कंपनी तथा कृषि में ओमनीलिटिक्स कंपनी ने प्रयोग किया. एग्रीफेज ओमनीलिटिक्स कंपनी का उत्पाद है एवं अनेक फसलों पर जीवाणु नियंत्रण में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है. यह कंपनी 10 वर्षों से कार्यरत है एवं पौधों के रोगों के उपचार में बीज अवस्था से फसल पकने तक विभिन्न अवस्थाओं में एग्रीफेज को प्रयोग किया जा रहा है.

भोजन में उपयोग - फेज के अनेक उत्पादों को फूड एवं ड्रग एडमिनिसट्रेशन (FDA) द्वारा वर्ष 2006 में संस्तुति दी गई है. इन्ट्रालिटिक्स द्वारा LMP-102 जिसको 'लिस्टशील्ड' भी कहते हैं यह लिस्टीरिया मोनोसाइटोजीन्स को नष्ट करता है और भोजन को सुरक्षित रखने के लिए प्रयुक्त होता है. LMP-102 द्वारा पोल्ट्री एवं मीट पदार्थ जो 'खाने के लिए तैयार श्रेणी' (RTE) में आते हैं को शोधित करने की संस्तुति की जाती है. इसी वर्ष FDA ने लिस्टेक्स (LISTEX) जो मिक्रीओस कंपनी द्वारा (EBI Foods Safety) उत्पादित है की संस्तुति की. यह चीज के ऊपर एल.मोनासाइटोजीन्स जीवाणुओं को नष्ट करने में प्रयुक्त होता है. जुलाई 2007 में इस फेज को सभी भोज्य पदार्थों में प्रयोग करने की संस्तुति की गई और इसे GRASवर्ग अर्थात 'भोजन के लिए सुरक्षित वर्ग' में रखा गया. वर्ष 2011 में यू.एस.ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन ने LISTEXको संसाधित भोजन में प्रयोग करने के लिए सर्वथा उपयुक्त माना और इसे USDAमें सम्मिलित कर लिया गया.

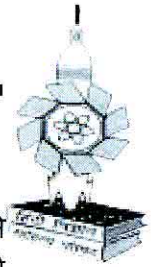

संसाधित भोजन के क्षेत्र में निरंतर शोध हो रही है जिससे यह पता चलेगा कि लाइटिक फेज का प्रयोग करके विभिन्न भोज्य पदार्थों को जीवाणुओं से संक्रमित होने से बचाया जा सकता है.

पौधों के रोगों के नियंत्रण में फेज का प्रयोग - सीरीरोलो एवं केल (1969) ने बताया कि नाशपाती की पत्तियों को ... फेज से उपचारित करने के एक घंटा बाद पत्तियों को जेन्थोमोनास केम्पेस्ट्रिस पेथो वार प्रूनी से प्रभावित करने पर 22 प्रतिशत पत्तियों में रोग के लक्षण दिखाई देते हैं जबकि फेज से बिना उपचारित पत्तियों में 58 प्रतिशत रोग आता है.

बॉयड और उनके साथियों ने (1971) प्रयोगों द्वारा देखा कि टमाटर की जड़ों को एग्रोबैक्ट्रीरियम ट्यूमीफेसिएन्स के फेज लाइसेट के घोल में डुबोने के तीन घंटे के अंदर विषाणु जड़ों में पहुंच जाता है. फेज जड़ों एवं तने में दो सप्ताह बाद भी पाया गया. पौधों को पहले फेज से उपचारित करने के तीन घंटे पश्चात जब जीवाणु के संपर्क में लाते हैं तो जीवाणु से उत्पन्न ट्यूमर के आकार में 43 से 72 प्रतिशत तक कमी पायी जाती है.

क्यू एवं उनके साथियों ने (1971) बताया कि धान के खेतों में पानी में जीवाणु जेन्थोमोनास ओराइजी का फेज बहुतायत में पाया जाता है. जब शुद्ध फेज को धान पर जीवाणु के आक्रमण से 1,3 एवं 7 दिन पहले से लगाया जाता है तो 100 प्रतिशत, 69 प्रतिशत एवं 86 प्रतिशत क्रमशः जीवाणु पत्ती झुलसा रोग में कमी पायी जाती है. उन्होंने बताया कि पत्ती पर रोग के स्थान पर पोषित जीवाणु की अनुपस्थिति में फेज 7 दिन तक स्थिर रहता है और लाइसेट या सूखे फिल्डर पेपर पर कमरे के तापमान पर लगभग 6 माह तक पाया जाता है.

रोग नियंत्रण को प्रभावित करने वाले कारक :

(1) राइजोस्फेयर में - भूमि में फेज का प्रयोग करने पर अनेक जैविक या अजैविक कारक उसे अप्रभावी बना सकते हैं. भूमि में फेज के प्रसार की दर धीमी होती है, यह मिट्टी के कणों पर चिपक सकती है. तथा मिट्टी में पी.एच.के कम होने पर निष्क्रिय हो सकती है.

(2) फिलोस्फेयर में - फेज को जब पौधों के ऊपरी भागों पर प्रयोग किया जाता है, यह अतिशीघ्र निष्क्रिय हो जाती है. विषाणु उच्च एवं निम्न पी.एच.ताप एवं सूर्य की किरणों से अप्रभावी हो जाते हैं. वर्षा द्वारा फेज के कण धुल जाते हैं और भूमि में चले जाते हैं. सूर्य की किरणों का यू.वू.ए. एवं यू.वी.बी. स्पेक्ट्रा (280-400 nm) फेजके लिए अत्यंत हानिकारक होता है.

फेज का फार्मुलेशन तैयार करना :

फेज को अधिक समय तक सक्रिय रखने के लिए विशेष माध्यम की आवश्यकाता होती है या ऐसे वाहक जीवाणुओं की आवश्यकता होती है जिसमें यह गुणित हो सके. बालोग (2002) ने तीन विशेष फार्मुलेशन का प्रभाव टमाटर की पंत्तियों पर देखा -

(अ) 0.5 प्रीजिलेटनाइज्ड कार्न फ्लोर (PCF) एवं 0.5 सूक्रोज.

(ब) 0.5 केसक्रीट NH-400 (पानी में घुलनशील केसीन पालीमर), 0.25 प्रतिशत प्रीजिलेटनाइज्ड कार्न फ्लोर एवं 0.5 प्रतिशत सूक्रोज (केसक्रीट)

(स) 0.75 प्रतिशत मिल्क पाउडर एवं 0.5 प्रतिशत सूक्रोज (स्किम मिल्क)

इन फार्मुलेशन के प्रयोग से फेज की सक्रियता फसल पर कुछ घंटों से बढ़कर एक से दो दिन तक हो गयी. जब फेज को पी.सी.एफ. केसक्रीट एवं स्किम मिल्क फार्मुलेशन में प्रयोग किया गया तो प्रयोग के 2 दिन बाद फेज की जनसंख्या 4700, 38,500 एवं 1 लाख गुना क्रमशः अधिक पायी गई. इन प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि फेज के कण फार्मूलेशन का प्रयोग करने पर अधिक समय तक सक्रिय रहते हैं.

पौधों में समन्वित रोग प्रबंधन : फेज का प्रयोग सफलतापूर्वक 'समन्वित रोग प्रबंधन' में किया जा सकता है. इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न फेज का मिश्रण प्रोटेक्टिव फार्मुलेशन के साथ खेत में प्रयोग किया जाए, तथा इसका छिड़काव संध्या के समय करना चाहिए, जिससे यू.वी. किरणों के दुष्प्रभाव से बचा जा सके. त्वरित गुणित होने वाले जीवाणु स्ट्रेन्स का प्रयोग करना चाहिए (बालोग एवं सहयोगी, 2010). फेज के उत्पादन एवं प्रयोग में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है तथा लगातार जीवाणुओं का निरीक्षण करते रहना चाहिए जिससे नए प्रतिरोधक क्षमता वाले जीवाणुओं की उत्पत्ति के बारे में जानकारी मिल सके. अतः फेज का प्रयोग खेती में करने पर लगातार फेज में होने वाले परिवर्तनों पर नजर रखना एवं उसके अनुसार फेज की फार्मुलेशन तैयार करना एक निरंतर क्रिया है जिसको अपनाकर घातक परजीवी जीवाणुओं को नियंत्रित किया जा सकता है. (रिबेक एवं सहयोगी, 2012)

इस प्रकार से हम देखते हैं कि जीवाणुओं के विरूद्ध फेज का प्रयोग पौधों, मनुष्यों एवं पशुओं के रोगों को उपचारित करने में सफलतापूर्वक किया जा रहा है. यह एन्टीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणुओं को नष्ट करने में सक्षम हैं एवं पर्यावरण, मनुष्यों और पौधों के लिए लाभदायक है.

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2013 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

तकनीक बदलती अन्नदाता की तकदीर

मनीष श्रीवास्तव
ए-16, गौतम नगर, निवेदिता हॉस्पिटल के पास,
भोपाल, मध्यप्रदेश, पिन कोड-462023

हमें आजादी मिले 67 वर्ष बीत चुके हैं और हाल ही में हमने अपना 65वां गणतंत्र दिवस मनाया है. आजादी और गणतंत्र का लंबा फासला हम तय कर चुके हैं. इस लंबी यात्रा में हमारे देश में कई बहुआयामी परिवर्तन हुए. नीति-निर्धारकों द्वारा तय किए कई लक्ष्य हमने पाए तो कई सोपान अब भी यथार्थ में परिणित होने की राह तक रहे हैं. इन वर्षों के दौरान अब तक विविध क्षेत्रों में जो भी विकास हुए उनमें एक क्षेत्र ऐसा है जो तब भी देश के विकास का महत्वपूर्ण आधार था जब भारत आजाद हुआ था और आज भी उतना ही विशेष है. वह है कृषि.

आज हम उदारीकरण व्यवस्था के दौर में जी रहे हैं जब सब कुछ वैश्विक हो चुका है. इस वैश्वीकरण के दौर में अन्य उद्योगों ने विकास के न सिर्फ नए कीर्तिमान रचे बल्कि देश के विकास में भी अपनी अभूतपूर्व हिस्सेदारी निर्मित कर ली है. इसके परिणाम स्वरूप अन्य क्षेत्रों में करोड़ों रोजगारों का सृजन हुआ है तथा वैश्विक स्तर पर हमने अपनी पहचान बनाई है. एक ऐसा देश जो जातिगत, भाषागत एवं विभिन्न धर्मों की विविधता होते हुए भी प्रगति पथ पर अग्रसर है. परन्तु इन सभी आवश्यक बिंदुओं के बावजूद अभी हमारे देश का मूलाधार यहां बसे लाखों गांव अन्नदाता ही हैं जो

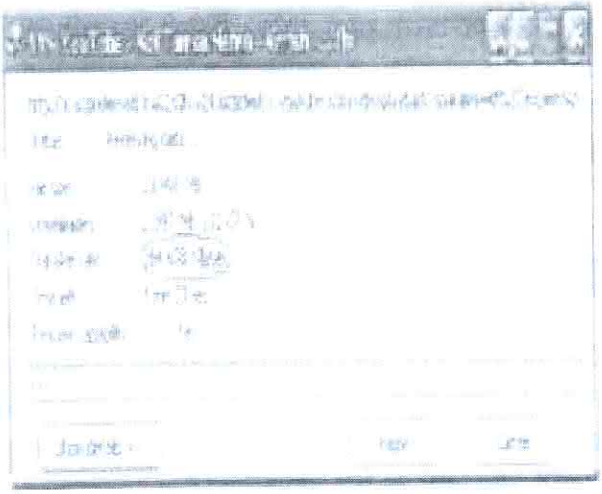

ई - खेती हेतु y-tube डाऊनलोड करें

अमेरिका द्वारा ई - खेती पर जारी डाक टिकट

दिन-रात मेहनत कर खेती से अपना जीविकोपार्जन करते हैं. यह लेख उन्हीं अन्नदाताओं के लिए है जिसमें यह बताने का प्रयास किया जा रहा है कि किस तरह से वर्तमान कालखंड में हमारे पास उद्योगों के अत्यधिक विकल्प नही थे. भारत को कृषि प्रधान देश की संज्ञा दी गई थी. क्योंकि यहां 90 प्रतिशत

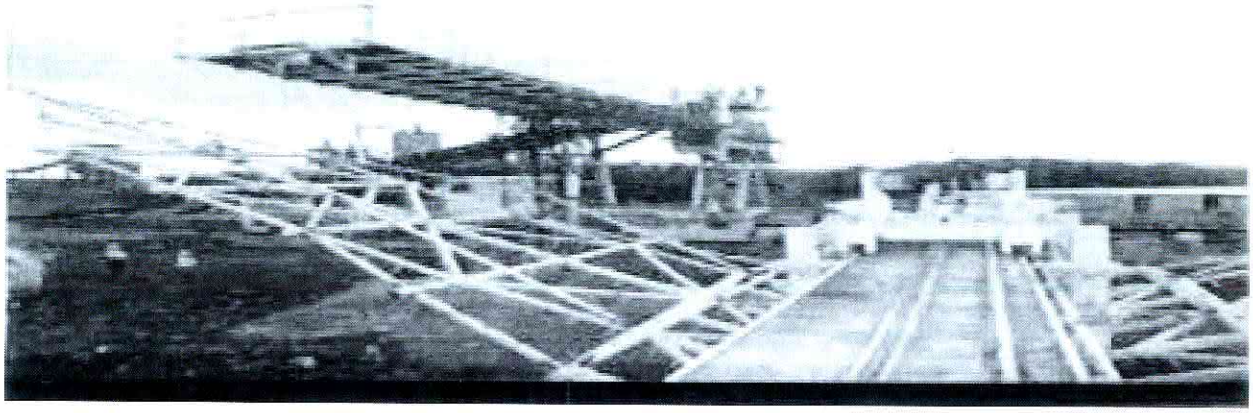

सामुदायिक रेडियो केंद्र हेतु स्थापित यंत्र

सूचना तकनीक के किसानों को लाभ पहुंचाया है या उनके काम को सरल बनाते हुए उनके धूमिल जहां को रोशन किया है.

प्रारंभ में, मैं कृषि तथा कृषकों की हालत का जिक्र स्वतंत्रता के समय से करना चाहूंगा. क्योंकि वर्तमान कालखंड में उपलब्ध सभी सुविधाओं के बारे में जानने से पहले संक्षेप में यह जानना जरूरी है कि यह उपलब्धि हमने किन परिस्थितियों को पार कर के पाई है. आजादी के बाद के आबादी गांवों में निवास करती थी और उनकी आजीविका का एकमात्र स्त्रोत खेती ही था. इसलिए उस समय देश के नीति-निर्धारकों ने विकास के लिए जो भी नीतियां बनाई उनमें ग्राम विकास एवं अन्नदाताओं को हमेशा केंद्र में रखा. इस दौरान किसानों के पास खेती के लिए ज्यादा विकल्प न थे. सारा कार्य परंपरागत रूप से ही चला करता था. अनुभव के आधार पर ही किसान खेती किया करते थे. खेत बखरने का काम बैलों के माध्यम से होता था. खेती के लिए उन्नत

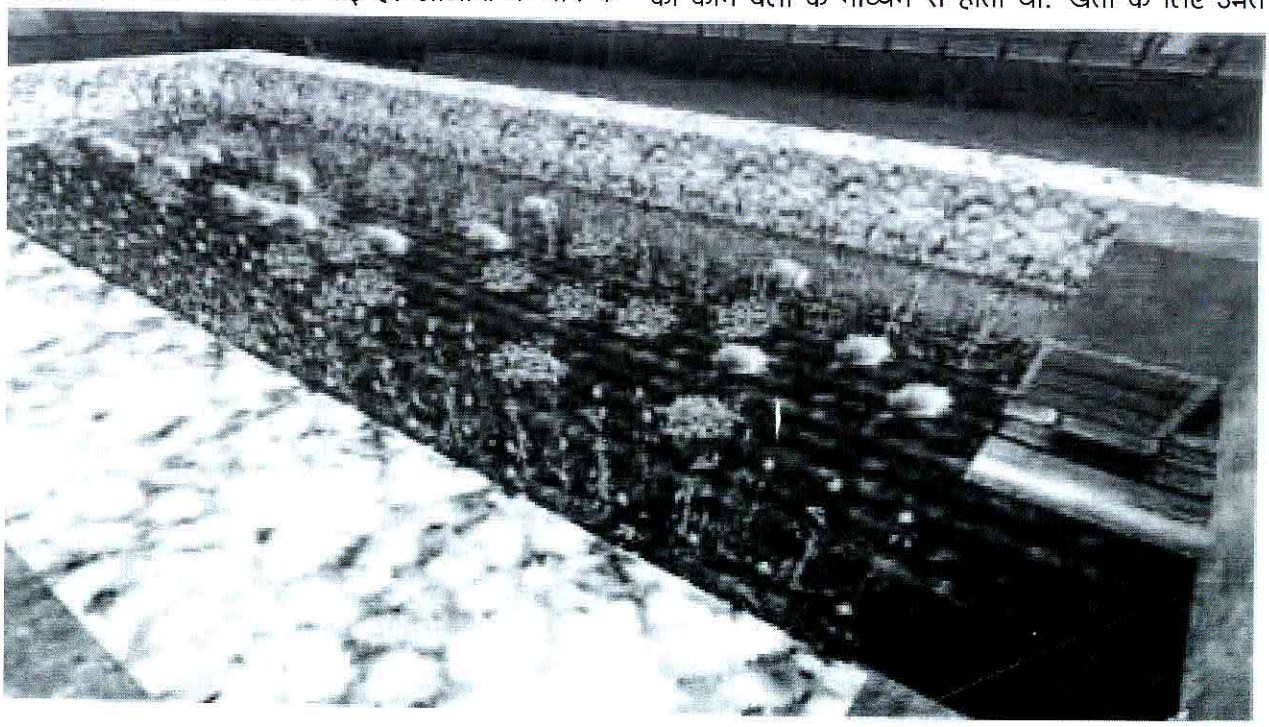

सूचना तकनीक द्वारा ई खेती के सफल परिणाम

बंजर भूमि पर ई - खेती के फायदे

उपकरण मौजूद न थे. इसलिए किसानों के लगभग सभी काम स्वयं ही करने होते थे. इसका परिणाम यह था कि खेती में लागत अधिक आती थी, मेहनत अधिक लगती थी, मौसम पर निर्भर रहने की मजबूरी भी थी क्योंकि बिना पानी के खेती संभव न थी. हमारे पास इसके अलावा किसानों को सलाह देने वाले न ही अनुभवी सलाहकार थे और न ही ऐसे वैज्ञानिक जो कृषि विकास में नवाचार को बढ़ावा दे सके. इन परिस्थितियों में ऐसा भी दौर आया जब देश को सूखा, अकाल जैसी भयावह स्थिति का भी सामना करना पड़ा.

खैर, यह कालखंड आजादी के बाद के कुछ दशकों का था, जब खेती को लेकर हालात भयावह थे लेकिन यहां हम यह कह सकते हैं कि यह नई सुबह होने के पहले की कालिमा थी क्योंकि इसके बाद देश में एक नई क्रांति का सूत्रपात हुआ. जिसके प्रणेता एम एस स्वामीनाथन हुए. 1967 में स्वामीनाथन की अगुआई में हरित क्रांति की नींव रखी गई. इस क्रांति के फलस्वरूप देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो सका और सुदृढ़ नेतृत्व की बदौलत हम अपने देश के आत्मसम्मान की रक्षा कर सके.

इस तरह किसानों ने सूखा, बाढ़, अकाल से अनवरत जूझते हुए खेती को फायदा का सौदा बनाने की एक संघर्षपूर्ण यात्रा तय की. असल में खेती के तौर-तरीकों तथा किसानों की कार्यप्रणाली में व्यापक परिवर्तन लाने का श्रेय तकनीक को ही जाता है. देश में तकनीक के आते ही चौ-तरफा सुविधाओं का प्रसार हुआ. प्रत्येक काम जिसके लिए पहले घंटों इंतजार करना पड़ता था, वह सब मिनटों में संभव हो गया. किसानों की मेहनत के साथ ही वक्त की भी बचत होने लगी. अब हम यहां उन्हीं सुविधाओं का उल्लेख करने जा रहे हैं. जो आज कृषकों को प्राप्त हैं. इनकी बदौलत खेती जैसा जटिल कार्य भी अन्नदाता सहजता से कर पा रहे हैं. वैसे तो सरकार द्वारा कई योजनाएं किसानों के लाभ हेतु चलाई जा रही है. यहां हम कुछ प्रमुख योजनाओं के बारे में बात कर रहे हैं.

1. **कृषि नेट परियोजना** - कृषकों को वेब पोर्टल के माध्यम से सभी राज्य सरकारों द्वारा आवश्यक जानकारियां प्रदान की जा रही हैं. इसे अंतर्गत उन्नत कृषि तकनीक, फसल प्रबंधन एवं भूमि/जल संवर्धन, फसलों में कीट व्याधि की पहचान, प्रकोप एवं उनका सामयिक उपचार, कार्यक्रम एवं कृषि गतिविधियों की आवश्यक जानकारियां किसानों को सातों दिन चौबीसों घंटे उपलब्ध कराई जा रही है. काश्तकारों की सुविधा के लिए प्रत्येक जिलों तथा विकासखंड स्तर पर किसान सूचना केंद्र, सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा, नागरिक सुविधा केंद्रों का संचालन किया जा रहा है ताकि किसान कभी भी अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के मुताबिक खेती से संबंधित किसी भी जिज्ञासा का समाधान पा सकें.

2. **ई-शासन परियोजना** - राष्ट्रीय स्तर पर ई-शासन प्रणाली का उपयोग ग्रामीण स्तर पर सुलभता से सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए किया जा रहा है. इसके अंतर्गत विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नामों से कई उपयोगी परियोजनाओं का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है. जिसके अब तक सुखद परिणाम प्राप्त हुए हैं. इन परियोजनाओं ने किसानों को आसानी से सूचना पहुंचाने का कार्य तो

किया ही है साथ ही कई उलझे हुए कार्य जिनमें उन्हें व्यर्थ ही समय नष्ट करना पड़ता था, से छुटकारा दिला दिया है. मध्यप्रदेश में ई-गवर्नेन्स परियोजना अंतर्गत दी जा रही संविधाओं में किसान बीज, खाद्य एवं दवा उपलब्धता, मौसम पूर्वानुमान, प्राकृतिक आपदा, जैविक खेती, फसल बीमा, पशुपालन से जुड़े मुद्दों पर आवश्यक जानकारियों का लाभ

में किसान भाइयों को एक टोल फ्री नंबर प्रदान किया जाता है जिस पर वे कॉल कर खेती-बाड़ी से जुड़ी अपनी सभी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं. इन सेंटरों पर अनुभवी काउंसलरों द्वारा कृषकों को मार्गदर्शित किया जाता है ताकि वे अधिक वैज्ञानिक ढंग से फसल उत्पादन कर सके.

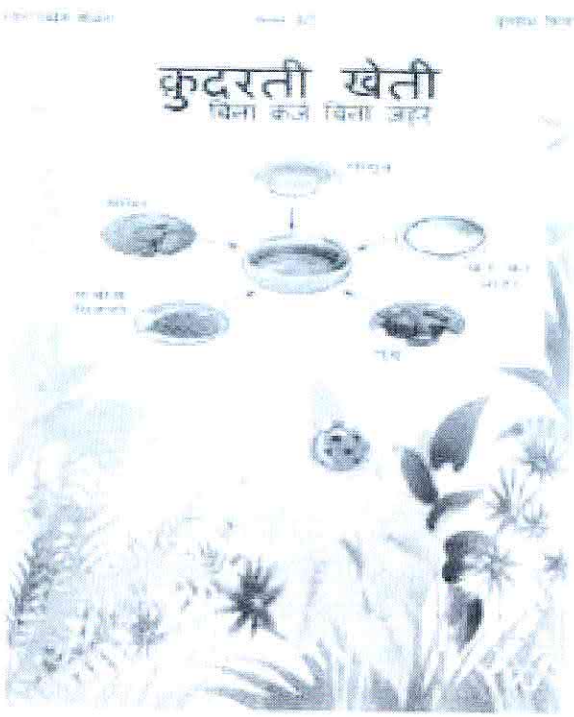

ई - खेती अहिंसक खेती है जो सबसे सुरक्षित एवं सरल है.

ई खेती हेतू बागबाजी

ले रहे हैं. इसके अलावा कृषि उपज के मंडी भाव, दैनिक बाजार भाव, खसरा की प्रति संबंधी सुविधाएं भी किसानों हेतु उपलब्ध है. गुजरात में, ई विश्व ग्राम परियोजना का संचालन किया जा रहा है, जिसमें सभी गांवों के परिवारों का एक विस्तृत डाटाबेस तैयार किया गया है जिसके आधार पर उन्हें आय, जाति, मूल निवास एवं जीवन-मृत्यु संबंधी प्रमाणपत्र जारी किये जाते हैं. इसमें संपत्तिवार पंचायत कर एकत्रित करने की सुविधा भी रखी गई है. यही कार्य आंध्रप्रदेश में राजीव गांधी इंटरनेट ग्राम परियोजना तथा दूसरे प्रांतों में अन्य परियोजनाओं के नाम से किया जा रहा है.

3. राज्य कृषि विकास योजना - इस योजना अंतर्गत किसान भाईयों के लिए किसान कॉल सेंटर, सामुदायिक रेडियो स्टेशन, एसएमएस तथा राज्य कृषि विस्तार एवं प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई है.

- **किसान कॉल सेंटर** - इसके अंतर्गत विभिन्न राज्यों

- **एसएमएस** - इसमें किसान भाईयों को एक नंबर उपलब्ध कराया जाता है जिस पर वे एसएमएस कर उपयोगी जानकारियां पा सकते हैं.

- **सामुदायिक रेडियो केंद्र** - सरकारी परियोजनाओं को किसानों तक पहुंचाने में सबसे बड़ी चुनौती संचार के साधन की उपलब्धता और क्षेत्रीय भाषा की आती है. इसी को दृष्टिगत रखते हुए सर्वाधिक उपयोगी माध्यम सामुदायिक रेडियो केंद्रों की स्थापना सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों में की गई है. इन केंद्रों पर क्षेत्रीय बोलियों में सूचनाओं का प्रसार किया जाता है. इन केंद्रों पर चैट शो भी आयोजित किए जाते हैं जिनमें अनुभवी कृषि विशेषज्ञों से किसान सवाल कर सकते हैं. प्रस्तुत कार्यक्रमों को रूचिकर बनाने के लिए रेडियो पर लोकगीत एवं स्थानीय समाचार भी सुनवाये जाते हैं.

- **दूरदर्शन** - दूरदर्शन पर कृषि पर कई सूचनाप्रद

कार्यक्रमों का निर्माण किया गया है. इनमें स्टूडियो में मौजूद कृषि विशेषज्ञों द्वारा उपयोगी जानकारियां तो दी ही जाती हैं साथ ही किसानों द्वारा पूछे गए सवालों का जवाब भी उन्हें तुरंत मिल जाता है. अब तक कई कार्यक्रमों के माध्यम से कृषकों में जागरूकता का प्रसार किया जा चुका है. इसके बहुचर्चित कार्यक्रमों में कृषि दर्शन, कृषि न्यूज, नजरिया आदि प्रमुख है.

4. ई-खेती - सूचना प्रौद्योगिकी ने हालिया दौर में इतनी तरक्की कर ली है कि अब खेती भी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से की जाने लगी हैं. केंद्र सरकार द्वारा एक परियोजना ई-खेती के रूप में चलाई जा रही है इसमें टेक्नॉलॉजी की मदद से त्वरित सूचनाएं किसानों तक पहुंचाई जा रही है. ई-खेती कार्यक्रम में हरित क्रांति की तरह पंजाब अग्रणी भूमिका निभा रहा है. इसके अंतर्गत भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट पर ज्ञानवर्धक सूचनाएं उपलब्ध हैं. जैसे फसल को कब बौना है, कौन सी खाद्य उपयोगी है, मौसम संबंधी तथा कृषि यंत्रों से जुड़ी सभी आवश्यक जानकारियां ई-खेती परियोजना के माध्यम से कृषकों को घर बैठे मिल रही हैं. इसलिए धीरे-धीरे ही सही किसानों में ई-खेती के प्रति रूझान बढ़ रहा है.

इस तरह से सूचना तकनीक किसानों के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाने की ओर अग्रसर है. सरकार द्वारा हर संभव प्रयत्न किये जा रहे हैं. जैसे-जैसे इंटरनेट, मोबाइल की पहुंच ग्रामीण इलाकों तक बढ़ती जा रही है. किसानों के लिए दुनिया को समझने और जानने के लिए एक नई दुनिया के द्वारा खुलते जा रहे हैं. वर्तमान में देश के कुल सकल घरेलु उत्पाद का 14 प्रतिशत हिस्सा कृषि का है जो यह साबित करता है कि अब भी एक बड़ा वर्ग खेती पर निर्भर करता है. इसलिए देश के खाद्यान्न उत्पादन के लिए जरूरी है कि अन्नदाता को जितना हो सके उतनी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं ताकि न सिर्फ सारे देश की भूख मिट सके बल्कि हम आत्मनिर्भर होकर बाहर देशों में निर्यात भी पुरजोर तरीके से किया जा सके. हमारे इस लक्ष्य को पाने में तकनीक ने अब तक मजबूत आधार दिया है तथा जाने वाले समय में तकनीक ही अन्नदाता की तकदीर बदलने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होगी.

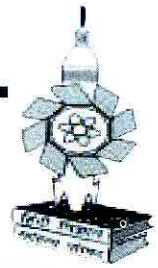

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2013 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत

डॉ.दयाशंकर त्रिपाठी
बी-2/63सी-1 के, भदैनी, वाराणसी-221001 (यू.पी.)

मानव जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि के कारण ऊर्जा स्रोतों का अत्यधिक दोहन किया गया है. उनके लिए भविष्य में ऊर्जा आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए अभी से विचार करने की आवश्यकता है. इसलिए आवश्यक है कि आज से ही सभी प्रकार के ऊर्जा स्रोतों का दोहन प्रारंभ कर दिया जाए. साधारणतया समस्त ऊर्जा संसाधनों को दो समूहों- अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधन एवं नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन में विभक्त किया जा सकता है. अनेक प्रकार के जीवाश्म ईंधन व नाभिकीय ऊर्जा अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोत हैं. प्राकृतिक गैस, पेट्रोल, डीजल तथा कोयला जीवाश्म ईंधन है जो शैलीय उत्पाद कहलाते हैं. यूरेनियम नाभिकीय ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है जो यूरेनियम के नाभिकीय विखंडन से प्राप्त किया जाता है. विश्व का जीवाश्म ईंधन एवं यूरेनियम का भंडार सीमित है और यह धीरे-धीरे समाप्त होने वाला है.

ऊर्जा प्राप्ति के लिए जीवाश्म ईंधन के दहन से अनेक प्रकार की गैसें व कणीय पदार्थ उत्सर्जित होते है जो पर्यावरण को प्रभावित करते हैं. भूमंडलीय तापमान में वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) अर्थात धरती का गरम होना, वायु प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, तेल रिसाव आदि पर्यावरण को दुष्प्रभावित करते हैं. अतः यह आवश्यक है कि अनवीकरणीय या सीमित ऊर्जा संसाधनों के उपयोग को कम किया जाए और उसके बदले में नवीकरणीय या असीमित ऊर्जा संसाधनों का प्रयोग अमल में लिया जाए. सभी प्रकार के नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन प्राकृतिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं, जिससे उनका असीमित उपयोग किया जा सके. ये सामान्यतया जीवाश्म ईंधन या नाभिकीय ऊर्जा की तुलना में पर्यावरण के लिए कम हानिकारक हैं. वर्तमान तकनीकी परिवेश में नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन सीमित ऊर्जा संसाधनों (जीवाश्म ईंधन व नाभिकीय ऊर्जा) की तुलना में अधिक खर्चीला है जो इसके लोकप्रिय होने एवं अपनाये जाने में मुख्य रूप से बाधक हैं. हालांकि नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की कीमतों में कमी लाने के लिए तकनीकी विकास व नये अनुसंधान कार्य जारी हैं, जिसमें सफलता मिलने की पूरी संभावना है.

नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों में सौर ऊर्जा सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, जो अक्षय ऊर्जा के नाम से विख्यात है. जलशक्ति, वायुशक्ति भूतापीय ऊर्जा (जियोथर्मल एनर्जी) सागर तरंगें एवं ज्वार ऊर्जा, समुद्री ऊष्मा की ऊर्जा, मैगनेटो हाइड्रोडायनामिक्स, बायोगैस, एल्कोहॉल एवं हाइड्रोजन ऊर्जा 'अन्य नवीकरणीय ऊर्जा' संसाधन के ज्ञात स्रोतों के अंतर्गत आते हैं.

सौर ऊर्जा

हमारे देशों में प्रचुर मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध हैं. यह उपलब्धता इसके विशाल क्षेत्रफल एवं भौगोलिक स्थिति के कारण हैं. 'सौर ऊर्जा' का उपयोग मानवहित में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में किया जाता है. सूर्य से सीधे प्राप्त होने वाली सौर ऊर्जा को विकिरित ऊर्जा

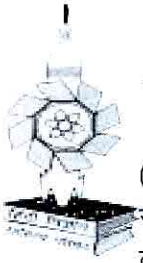

(रेडियन्ट एनर्जी) कहते है. परोक्ष रूप से प्राप्त सौर ऊर्जा उसे कहते हैं जो ऐसे पदार्थों से प्राप्त की जाती है, जो सूर्य के विकिरण ऊर्जा को विभिन्न रूपों में पहले से ही समाहित किए रहते हैं, जैसे-पेड़-पौधे. सौर ऊर्जा को सीधे तौर पर ऊष्मा प्राप्ति के लिए उपयोग किया जाता है तथा वैकल्पिक रूप में इस ऊष्मा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है, जैसे फोटोवोल्टाइक बैटरी सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देती है. रात्रि काल या सूर्य की अनुपस्थिति के समय में जब सौर शक्ति उपलब्ध नहीं रहती, उस समय विद्युत उत्पादन तथा उसके भडारण व उपयोग के लिए एक पूर्तिकर (बैक अप) संयंत्र की आवश्यकता पड़ती है.

हमारे देश में सौर ऊर्जा के उपयोग की विशाल क्षमता है. देश के लगभग 82 प्रतिशत क्षेत्र औसत 350 से 550 कैलोरी ऊर्जा प्रतिवर्ग सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की दर से सौर विकिरण द्वारा ग्रहण करते हैं. दूसरे शब्दों में यह अनुमान लगाया गया है कि औसतन एक वर्गमीटर का क्षेत्र लगभग 1 किलोवाट ऊर्जा प्रतिवर्ष ग्रहण करता है. यदि इसकी तुलना तेल से की जाये तो पांच वर्ग मीटर क्षेत्र उतनी ही ऊर्जा ग्रहण करता है जितना कि एक टन तेल जलाने पर ऊर्जा प्राप्त होती है.

भारत विश्व के उन प्रमुख राष्ट्रों में से एक है जिसने सौर ऊर्जा का उपयोग उस समय से प्रारंभ कर दिया था जब राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने सौर ऊर्जा चालित कुकर का विकास सन् 1950 में ही कर लिया था. अब भारत में सौर ऊर्जा के प्रयोग के क्षेत्र में अनेक शोधकार्य किए जा चुके हैं तथा पानी गर्म करने तथा शीतगृह, पम्प विद्युत गृह, ऊष्मीय संचालक इत्यादि का विकास किया गया है.

भारत सरकार द्वारा वृहत् स्तर पर सौर ऊर्जा संयंत्रों के विकास, प्रदर्शन और व्यापारीकरण का कार्य किया जा रहा है. सौर ऊष्मीय तकनीक के अंतर्गत जल एवं अंतरिक्ष तापन, प्रशीतन, वातानुकूलन, फसलों को सुखाने, खारापन निवारण, पंपिंग, विद्युत उत्पादन विकेन्द्रीकरण संबंधी उपकरणों का विकास किया जा रहा है. सन् 1981 में नई दिल्ली के पांच सितारा होटल कुतुब में एक जलतापन संयंत्र की स्थापना की गयी थी तथा अनुमान लगाया गया था कि इसकी लागत लगभग आठ वर्षों में प्राप्त हो जाएगी. पहले सौर ऊर्जा चालित दस टन के अनाज सुखाने वाले संयंत्र की स्थापना लुधियाना में सन् 1987 में की गई जिस पर लगभग दो लाख रुपये लागत आयी थी. सौर ऊर्जा चालित अनाज सुखाने के संयंत्र पर लागत तेलचालित संयंत्र के दस रुपये प्रतिटन की तुलना में मात्र छः रुपये प्रतिटन आयी थी. एक अन्य एक टन धान सुखाने के एक अन्य संयंत्र की स्थापना अन्नामलाई विश्वविद्यालय में की गयी. अमूल डेरी, आनन्द में दूध को स्प्रे ड्राई करने के लिए एक फ्री हीटर की स्थापना की गयी. इस संयंत्र के द्वारा प्रतिवर्ष चालीस हजार रुपये की बचत होती रही. इसका व्यापक उपयोग फार्मो तथा बागानों में किया जा सकता है. यह आकलन किया गया है कि सिर्फ चाय उद्योग में इसके उपयोग के द्वारा चाय उत्पादन के लागत को काफी घटाया जा सकता है.

गुजरात के अवानियाँ नामक ग्राम में सोलह वोल्टीय युक्तियों का प्रयोग घरेलू प्रकाश व्यवस्था के लिए बहुत पहले ही प्रारंभ कर दिया गया था. आंध्र प्रदेश के सलोजापल्ली नामक ग्राम में इसका उपयोग सड़क प्रकाश व्यवस्था तथा सामुदायिक प्रकाश व्यवस्था के लिए किया गया था. द्वारका बंदरगाह पर इसका उपयोग पोत संचालन एवं श्रीनगर तथा लेह के सरकारी स्कूलों में सामुदायिक रेडियो सेटों को विद्युत आपूर्ति करने में किया गया है.

सौर ताप चालित कुछ महत्वपूर्ण उपकरण

सौर ऊर्जा वैसे सुदूर क्षेत्रों के लिए एक बेहतर विकल्प है, जहाँ पावर ग्रिड से जुड़ाव व्यवहार्य नहीं है. सौर फोटोवोल्टाइक प्रोद्योगिकी से सौर ऊर्जा की प्रत्यक्ष किरणों को सीधे विद्युत में बदला जाता है. भारत प्रतिवर्ष 500 ट्रिलियन के.डब्ल्यू.एच. से भी अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त करता है. सौर ताप चालित कुछ महत्वपूर्ण उपकरण निम्नलिखित हैं :-

(अ). वाटर हीटिंग सिस्टम : सौर ताप प्रौद्योगिकी वाटर हीटिंग सिस्टम में काफी उपयोगी है, जिसे सौर वाटर हीटिंग प्रौद्योगिकी कहा जाता है. इस प्रणाली में एक विद्युतरोधी वाटर टैंक में फ्लैट प्लेट कलेक्टर के जरिए पानी गर्म किया जाता है. इसमें लगा एब्जार्बर सौर विकिरण ग्रहण करके उसे ताप बिजली में बदल देता है. यह ताप ऊर्जा एब्जार्बर में स्थित राइजर ट्यूब्स में प्रवाहित पानी तक पहुंचती है. ये राइजर कलेक्टर के हीटर से जुड़े होते हैं. इस समय वाणिज्यिक स्तर पर सौर वाटर हीटिंग सिस्टम का उत्पादन किया जा रहा है. भारत में इसके कुल निर्माताओं में से अधिकांश दक्षिणी राज्यों से हैं.

(ब). बिजली उत्पादन : सौर ताप बिजली एक पंक्ति में केन्द्रित परावलयित नाली के जरिए तैयार की जाती है. सौर ताप नाली सिस्टम में समांतर नालियों के मोड्यूल्स होते हैं, जिनमें परिवर्तित पदार्थों की कतारें लगी होती हैं. यह नाली इसके फोकस लाइन के साथ जुड़े एक पाइप पर सूर्योदय को फोकस करता है. एक ऊष्मा रूपांतरित द्रव जो

सामान्यतः पानी होता है. पाइप पर प्रसारित होता रहता है. उसके बाद गर्म द्रव को पंप करके कार्यरत द्रव में बदला जाता है. फिर यह द्रव प्राइम मूवर, कंडेन्सर तथा लिक्विड पंप से होता हुआ एक रैंकिंग साईकल को अंजाम देता है और यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है. प्राइम से लगे जेनरेटर से बिजली का उत्पादन होता है. परावलयिक नाली का सांद्रण औसतन 10 से 100 तक होता है एवं उसमें ताप का प्रसार 10 से 400 डिग्री सेल्सियस तक होता है.

(स). सौर तालाब : सौर तालाब वास्तव में नमक का तालाब होता है जो गर्म सौर विकिरण को एकत्र करने के साथ साथ भंडारण भी करता है. तालाब के गर्म पानी में मौजूद संवहनीय लहरों को नमक जल के स्तरीकृत सतहों से रोका जाता है. तालाब गहराई के साथ अधिक घनत्व से युक्त होते हैं. तालाब में प्रविष्ट सौर विकिरण को कुछ हद तक जल सोख लेता है, हालाँकि अधिकांश अवशोषण तालाब के किनारों में ही हो पाता है.

इसमें ताप का निष्कर्षण दो युक्तियों से होता है - पहला या तो पानी में डूबे ताप एक्सचेंजर्स से अथवा दूसरे तालाब से बाहर लगे ताप एक्सचेंजर्स से. भारत में इस प्रकार के लवण आनुपातिक सौर तालाबों की लोकप्रियता बढ़ रही है. इनमें कम लागत में बिजली का उत्पादन किया जाता है.

(द). सौर कुकर : सौर ऊर्जा से संचालित कई प्रकार के कुकरों का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें बॉक्स टाइप के कुकर का वाणिज्यिक रूप से उत्पादन हो रहा है. इस प्रकार के कुकर में एक विद्युतरोधी बॉक्स होता है जो काँच या प्लास्टिक के पारदर्शी आवरण से ढँका होता है. इसमें अधिकतम 150 डिग्री सेल्सियस तक तापमान होता है और खाना बनाने में डेढ़ घंटे से लेकर तीन घंटे तक का समय लग जाता है. सौर कुकर से सूक्ष्म स्तर पर उपभोक्ताओं के

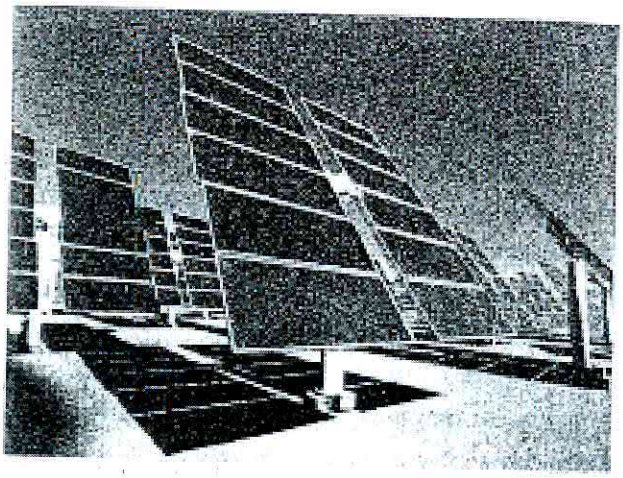

लिए वित्तीय बचत की जा सकती है, जबकि वृहत् पैमाने पर इससे प्राकृतिक गैस एवं काष्ठ ईंधन का संरक्षण किया जा सकता है.

भारत में ऊर्जा के अपारंपरित संसाधनों का दोहन करने की दिशा में अनेक वैज्ञानिक प्रयास किए जा रहे हैं. हमारे देश में नवीकरणीय ऊर्जा के अन्य संसाधनों से ऊर्जा प्राप्ति की प्रचुर संभावनाएं हैं. इनका दोहन कर सीमित व अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को समाप्त होने से बचाया जा सकता है. इन संसाधनों की उपलब्धता भिन्न भिन्न क्षेत्रों में वहां की भौगोलिक स्थिति व अन्य परिस्थितियों के अनुसार होती है.

बायोगैस : 'सौर ऊर्जा' परोक्ष रूप से भी बहुत उपयोगी होती है, जो एक जैवमान ऊर्जा के रूप में उपस्थित रहती है. यह मानव समाज के लिए काफी महत्वपूर्ण है. वनस्पतियों में सौर ऊर्जा का संचयन प्रकाश संश्लेषण द्वारा होता है जो जैवमास के रूप में वृद्धि करता है, अर्थात जैवमानस से ऊर्जा उन पदार्थों से ली जाती है, जिनका निर्माण प्रकाश संश्लेषण द्वारा होता है. जीवित वनस्पतियाँ एवं उनके शुष्क अवशेष, मृदु जलीय एवं समुद्री शैवाल, कृषि एवं वनों के अवशेष, जैसे -तिनका, ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न की जा सकती है. बायोगैस प्राप्त करने के अन्य महत्वपूर्ण स्रोत कुक्कुटशाला, सुअर की लीद, फार्म अपशिष्ट पदार्थ, जलीय पौधे जैसे जलकुंभी आदि हैं.

एल्कोहॉल : इथाइल एल्कोहॉल भी धीरे-धीरे एक चमत्कारी ईंधन के रूप में सामने आया है, जिसके प्रयोग से वर्तमान ऊर्जा संकट को काफी हद तक दूर किया जा सकता है. इसके प्रयोग से न केवल कारें ही चलाई जा सकती हैं बल्कि घरेलू तापन तथा विद्युत उत्पादन भी किया जा सकता है. यह विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, जो पेट्रोल के मामले में अभी भी स्वावलंबी नहीं है. वैज्ञानिकों के अनुसार एल्कोहॉल पेट्रोल के मुकाबले कहीं ज्यादा श्रेष्ठ ईंधन है. एल्कोहॉल का दहन पेट्रोल की अपेक्षा कहीं अधिक शीतल, स्वच्छ तथा उपयोगी होता है. इथेनाल चालित कारें अधिक अच्छा औसत देती है तथा किसी प्रकार का सीसा एवं सल्फर संबंधी प्रदूषण नहीं करतीं, जिससे इजंन की आयु भी बढ़ जाती है.

सी.एन.जी.: सी.एन.जी.का गैसोलीन (पेट्रोल) या डीजल ईंधन के स्थान पर उपयोग किया जाता है. इसे पर्यावरण स्वच्छता वाला वैकल्पिक ईंधन माना जाता है.

इसमें 95 प्रतिशत मीथेन तथा 5 प्रतिशत ब्यूटेन, प्रोपेन, ईथेन एवं अन्य गैसें और जलबाष्प का संयोजन होता है. मीथेन हाइड्रोजन और कार्बन का मिश्रण होता है. दिल्ली

एवं मुंबई में प्रदूषण के उत्सर्जन में कमी आयी है, जो कि इन महानगरों में चलने वाले वाहनों में गैसोलीन एवं डीजल के स्थान पर सीएनजी के प्रयोग का परिणाम है.

एल.पी.जी. : एल.पी.जी.या प्रोपेन वाहनों के लिए प्रचलित वैकल्पिक ईंधन है. एचडी-5 के अनुसार परिवहन ईंधन के रूप में प्रयुक्त एल.पी.जी. में 90 प्रतिशत प्रोपेन, 5 प्रतिशत प्रोपिलिन व 5 प्रतिशत अन्य गैसें होती हैं.

फ्यूल सेल : इस युक्ति के माध्यम से किसी ईंधन की रासायनिक ऊर्जा को मध्यवर्ती स्तर पर बिना दहन के उपयोगी विद्युत एवं ताप में बदला जा सकता है. हाइड्रोजन फ्यूल सेल का प्रमुख ईंधन है, जिसे ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है. माड्यूलर होने के कारण फ्यूल सेल वितरित विद्युत उत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है. भेल ने विद्युत उत्पादन हेतु 25 किलोवाट क्षमता के पीएफसी फ्लूल सेल का विकास किया है. एसपीआईसी साइंस फाउंडेशन ने 5 किलोवाट क्षमता की फ्यूल सेल बैट्री हाइब्रिड वैन विकसित की है.

जल शक्ति : जल शक्ति प्राप्त करने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में ऊंचे बाँधों का निर्माण कर प्रवाहमान नदियों, झरनों या जलप्रवाहिकाओं के जल को रोक लिया जाता है. जिससे उस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में जल संचित हो जाता है. इससे ऊचांई से गिरनेवाले जल द्वारा बाँधों की तली में स्थापित टर्बाइनों (विद्युत उत्पादन संयंत्र) को संचालित कर विद्युत उत्पादन किया जाता है. विश्व में तैयार कुल विद्युत ऊर्जा का लगभग एक चौथाई भाग जल शक्ति द्वारा उत्पन्न किया जाता है. यह ऊर्जा ताप शक्ति संयंत्र (थर्मल पावर प्लांट) से उत्पन्न विद्युत ऊर्जा की तुलना में काफी सस्ती होती है. हालाँकि पानी को रोक कर एकत्र करने के लिए बांधों के निर्माण से अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हो जाती हैं. इससे वनस्पतियों एवं जंतु आवास जल में विलीन हो जाते हैं तथा उस क्षेत्र के स्थानीय निवासियों को विस्थापित जीवन व्यतीत करना पड़ता है.

पवन ऊर्जा : हमारे देश में पवन ऊर्जा लगभग सभी स्थानों पर प्रचुरता से उपलब्ध है. यह मुख्य रूप से क्षेत्र विशेष की स्थिति एवं बनावट पर आधारित है. इसमें वायु का दबाव जब पंखे को घुमाता है तब उस ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए किया जाता है. वस्तुतः पवन ऊर्जा का दोहन केवल उन्हीं स्थानों पर विशेष रूप से किया जा सकता है जहां वायु का प्रवाह निरंतर बना रहता है. यह द्वीपों, तटीय क्षेत्रों एवं पर्वतीय निकासों में विशेष रूप से संभव है.

आजकल भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पवन शक्ति सस्ती एवं अपारंपरिक ऊर्जा संसाधनों के रूप में लोकप्रिय हो रही है. इसकी सर्वाधिक विशेषता यह है कि यह धरातल पर उपलब्ध रहती है. इसके कुछ अन्य लाभ भी है, जैसे ऊर्जा रूपांतरण साधनों का सरल होना, रख-रखाव पर बहुत कम खर्च आना, नगण्य ईंधन खर्च आना, प्रदूषण मुक्त होना इत्यादि. एक अध्ययन के अनुसार भारत में कुल उपलब्ध पवन शक्ति क्षमता अपेक्षाकृत कम है. अनेक स्थान ऐसे हैं जहां पवन चक्कियों का प्रयोग पानी पंप कर सिंचाई करने अथवा विद्युत उत्पन्न करने में किया जा रहा है. ये स्थान हैं तटीय तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और कुछ पहाड़ी क्षेत्र. अनेक संस्थानों ने ऐसी पवन चक्कियों का निर्माण किया है, जो मात्र 10 कि.मी. प्रति घंटा के वेग से चलनेवाली पवन गति पर भी कार्य कर रही है. इनका उपयोग वृहद क्षेत्रों में पानी पंप करने तथा विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है. उत्तर प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में पवन चक्कियों से वृहद पैमाने पर सिंचाई का कार्य किया जा रहा है. चूंकि, ग्रीष्म ऋतु में देश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा पूरे उत्तर प्रदेश में पवन गति सबसे मंद होती है, अतः धीमी गति से चलने वाले पवन चक्की का विकास लाभकारी सिद्ध हुआ है.

ज्वारीय ऊर्जा : ज्वारीय ऊर्जा समुद्र से प्राप्त एक अन्य प्रकार की ऊर्जा है जिसमें समुद्री जल स्तर के उतार-चढ़ाव (लहरों) के उच्चतम व निम्नतम ज्वार बिंदु के मध्य जल स्तर के अंतर को विद्युत उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है. ज्वारचालित स्टेशनों की निर्माण लागत ताप विद्युत स्टेशन की अपेक्षा दोगुनी होती है. इसकी एक अन्य बड़ी कमी यह है कि ज्वार के आने पर ही विद्युत उत्पादन किया जा सकता है. भारत की तट रेखा 6100 सौ.कि.मी. लंबी है, किंतु बहुत कम ऐसे स्थान है जहां ज्वार इतना होता है कि उससे ऊर्जा उत्पन्न की जा सके. यह अनुमान लगाया जाता है कि कैम्बे की खाड़ी तथा कच्छ की खाड़ी से विद्युत उत्पादन किया जा सकता है. एक अन्य संभावित स्थान सुंदरवन भी है जो पश्चिम बंगाल में है.

भूतापीय ऊर्जा : तप्त जल कुंड या भाप अथवा गर्म झरनों जैसे ऊपर की तरफ प्रवाहित होने वाले तप्त भूगर्भ जल का उपयोग टर्बाइन चलाने एवं भूतापीय शक्ति संयंत्र में विद्युत उत्पादन के लिए किया जा सकता है. भूतापीय ऊर्जा का संबंध पृथ्वी के धरातल की ऊष्मा की मात्रा से है जो वृहद मात्रा में ज्वालामुखी के रूप में उपलब्ध हैं. विभिन्न अध्ययनों के अनुसार भूतापीय ऊर्जा का उपयोग जम्मू व कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में गर्म करने के लिए किया जा सकता है.

लद्दाख में प्यूगा नामक स्थान पर एक प्रायोगिक परीक्षण वृत्त (टेस्ट रिंग) की स्थापना भूतापीय अंतराल को गर्म करने की जांच के लिए की गई है. कुछ पौध घर में गर्म करने संबंधी सफल प्रयोग संपन्न हो चुके हैं. स्पष्ट है कि तेजी से समाप्त हो रहे ऊर्जा संसाधनों की समस्या को विज्ञान एवं तकनीक के उचित प्रयोग से हल किया जा सकता है. सन् 1950 के दशक में जलाने की लकड़ी का गंभीर संकट खड़ा हो गया था. जिसके फलस्वरूप लोगों ने कोयले का उपयोग वैकल्पिक ईंधन के तौर पर करना शुरू कर दिया. इसके फलस्वरूप अनेक तकनीकी विकास परिलक्षित हुए, जिससे औद्योगिक क्रांति घटित हुई और आज एक बार फिर संपूर्ण विश्व ऊर्जा संकट के दौर से गुजर रहा है.

लहरों या सागर तरंगों से ऊर्जा : वायु प्रवाह से उत्पन्न समुद्री तरंगों में टर्बाइन चलाने एवं विद्युत उत्पादन की क्षमता होती है. समुद्र तट के एक कि.मी. क्षेत्र पर थपेड़े मारती लहरों से अनुमानित 40 मेगावाट विद्युत उत्पन्न की जा सकती है. समुद्री लहरों का दोहन करने की दिशा में भारत में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं. मद्रास स्थित पोर्ट ट्रस्ट के इंजीनियर ने एक युक्ति का विकास किया था. जिसे पेटेंट भी करा लिया था. इसके द्वारा लहरों से ऊर्जा उत्पन्न की जाती है. जो संप्रति लहरचालित जेनरेटर है.

हाइड्रोजन को आवश्यकतानुसार विभिन्न भौतिक अवस्थाओं मे रखा जा सकता है. साधारण दाब पर यह गैस अवस्था में होती है. विद्युत ऊष्मा अवरोधी पात्रों में यह द्रव और हाइड्राइड के रूप में ठोस अवस्था में रखा जा सकता है. हाइड्राइड को जहां मोटरगाड़ियों में प्रयोग किया जा रहा है वहीं द्रव हाइड्रोजन विमान चालन के लिए उपयोगी है. हाइड्रोजन के साथ एक खास बात यह है कि इसके उपयोग से किसी भी तरह की दुर्गंध या प्रदूषण नहीं फैलता. वायु में जलने के बाद यह ऑक्सीजन से क्रिया करके जल बनाती है.

हाइड्रोजन को प्राकृतिक गैस के स्थान पर उपयोग में लाया जा सकता है. इसके लिए औद्योगिक भट्टी, गैस-चूल्हा और गर्म करने वाले अन्य उपकरणों के बर्नर में थोड़ा सा फेरबदल करना पड़ेगा. इसका दहन ज्वालारहित होता है इसलिए इसमें बर्नर के स्थान पर चीनी मिट्टी की एक छिद्रित प्लेट इस्तेमाल की जाती है. इस प्लेट के ऊपरी सिरे पर प्लेटिनम की एक बारीक परत रहती है, जो उत्प्रेरक का कार्य करती है.

हाइड्रोजन के ठोस रूप (पाउडर) यानि हाइड्राइड से मोटरगाड़ियां चलाने का सफल प्रयोग एक दशक पहले ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हो चुका है. यहां के भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर ए.एन.श्रीवास्तव और उनकी टीम ने हाइड्रोजन हाइड्रोजन बनाने

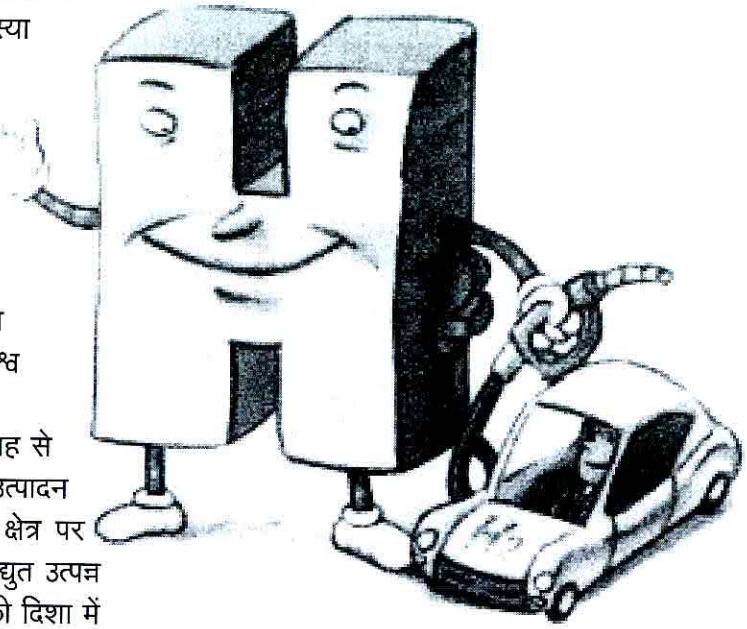

और उससे मोटरसाइकिल चलाने का सफल प्रयोग किया था. उनके अनुसार 200 ग्राम हाइड्राइड से 50 किलोमीटर तक मोटरसाइकिल चलाई जा सकती है. इससे किसी तरह का कोई खतरा नहीं होगा. इंजन में भी कोई फेरबदल नहीं करना होगा. हाइड्राइड के लिए एक क्यूब लगाना होगा जो पाउडर को गैस में बदलकर सीधे इंजन को दहन के लिए उपलब्ध करायेगा. जिस तरह पेट्रोल पम्पों से डीजल व पेट्रोल बिकता है उसी तरह वहीं से इस क्यूब की बिक्री आसानी से हो सकती है.

वह दिन दूर नहीं जब धरती, जल और आकाश में उड़ने वाले ज्यादातर वाहन हाइड्रोजन से चलने लगेंगे. नासा ने हाइड्रोजन ईंधन से अन्तरिक्षयानों को उड़ाने की योजना बनाई है. ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी में हुए परीक्षण में हाइड्रोजन से वाहन को 461 कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ाया गया है. यह एक रिकॉर्ड है. 'वर्ल्ड एनर्जी कान्फ्रेंस 2012' में हुई घोषणा के अनुसार डेम्लर ए.जी.हुन्डई और टोयोटा कंपनियां 2015 तक हाइड्रोजन से चलनेवाली गाड़ियां सड़कों पर बिक्री के लिए उतार देंगी. 2013 तक ऐसी गाड़ियां शोरूमों तक पहुंच जाएंगी. 'बोइंग' ने 2008 में हाइड्रोजन से चलनेवाले मानवरहित वायुयान का परीक्षण कर लिया था. 'निसान' ने 2009 में ही लंदन में हाइड्रोजन से चलनेवाले वाहन का परीक्षण कर लिया था. ऐसे वाहन गत 2012 ओलंपिक के अवसर पर लंदन में प्रयोग किए गए.

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2012 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख

पशुओं में कैंसर : एक विहंगम दृष्टि

डॉ.रमेश सोमवंशी
प्रधान वैज्ञानिक, विकृति विज्ञान विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान,
इज्जतनगर, बरेली-243122 (उ.प्र.)
ई मेल : dr.rsomvanshi@gmail.com

मनुष्यों में घातक रोगों में हृदय-वाहिनी रोग, वृक्क रोग, मधुमेह, कैंसर आदि हैं. वर्तमान में संक्रामक विषाणु रोगों के प्रकोप भी जानलेवा सिद्ध हो रहे हैं यथा डेंगू, मस्तिष्कशोथ, एच1एन1 आदि. बच्चों में दस्त, निमोनिया, कुपोषण आदि से अत्यधिक मृत्यु होती है. कई रोगों के उपचार तथा बचाव के उपाय सुलभ हैं. कैंसर के साथ ऐसा विरल है. महिलाओं में स्तन कैंसर, गर्भाशयग्रीवा (सरवाइकल) कैंसर तथा पुरूषों में फेफड़ों, यकृत, मुख, पौरूष ग्रंथि आदि के कैंसर उल्लेखनीय हैं. महिलाओं के कैंसर हार्मोन विकारों, विषाणु संक्रमण तथा पुरूषों में धूम्रपान, तम्बाकू सेवन तथा मदिरा पान के कारण हो सकते हैं. पौरूष ग्रंथि का कैंसर हार्मोन विकारों के कारण हो सकता है. सभी प्रकार के कैंसर प्रौढ़ तथा वृद्धायु में होते हैं. मात्र चंद कैंसर इसके अपवाद हैं. वर्तमान में कतिपय कारणों से मनुष्यों में मस्तिष्क कैंसर का अधिक आघटन भी ध्यानाकर्षित कर रहा है. कैंसर का प्रभावी उपचार सुलभ नहीं है. यह मंहगा भी है. अतः यह जानलेवा भी हो सकता है.

मनुष्यों की भांति पालतू, कृषि, प्रयोगशालीय पशुओं, वन्यजीवों एवं पक्षियों में कैंसर होते हैं. अधिकांश कैंसर वयस्क तथा वृद्ध पशुओं में होते हैं. विभिन्न प्रजाति के पशुओं में सर्वाधिक कैंसर कुत्तों तथा घोड़ों में होते हैं. इस के पश्चात गायों-भैंसों तथा भेड़ों का स्थान है. शूकरों तथा बकरियों में अपेक्षाकृत कम कैंसर होते हैं. विभिन्न प्रजाति के मुक्त तथा बंधक वन्यजीवों में भी कैंसर असमान्य नहीं हैं. प्रयोगशालीय

तालिका-1 : विभिन्न पशु प्रजातियों में प्रमुख कैंसर

क्रमांक	पशु प्रजाति	कैंसर के प्रकार
1.	कुत्ता	स्तन कैंसर, त्वचा, कैंसर, संचारणीय वेनेरियल सारकोमा तथा मुखीय पैपिलोमता
2.	घोड़ा	सारक्वायड तथा त्वचा कैंसर
3.	भेड़-बकरी	अविवंशीय पल्मोनरी एडिनोमैटोसिस या जैग्जेक्टी
4.	गाय-भैंस	सींगों के कैंसर, आंखों का कैंसर, पर्वतीय पशुओं में मूत्राशय का कैंसर, ल्यूकोसिस, इथमायड कार्सीनोमा तता त्वचीय मस्सा
5	मुर्गी-बत्तख	मैरक्स रोग, पक्षी ल्यूकोसिस तथा अफ्ला विषजन्य यकृत कैंसर

पशुओं में मूषकों व चूहों में कैंसर आम है. शशकों में भी इसका आघटन होता है. पक्षियों में कुक्कुटों तथा बत्तखों में भी प्रायः कैंसर होते हैं. पशुओं में कैंसर के निदान तथा उपचार पर अधिक ध्यान व शोध हेतु प्रचुर धन की आवश्यकता है. पशुओं के कैंसर मानव कैंसर के अध्ययन हेतु मॉडल की तरह प्रयुक्त किए जाते हैं. कुतियों का स्तन कैंसर, मानव स्तन कैंसर के अध्ययन का एक अच्छा मॉडल है. प्रयोगशालीय पशुओं के कैंसर को भी मॉडल की तरह प्रयोग करते हैं. प्रस्तुत लेख में हम पशुओं के प्रमुख कैंसरें, उनके कारण, लक्षण, निदान, उपचार तथा रोकथाम के उपायों तक ही सीमित रहेंगे. तालिका - (1) में पशुओं के प्रमुख कैंसरों का उल्लेख हैं.

कुत्तों के कैंसर : मनुष्यों की भांति कुत्तों में कैंसर का आघटन अत्यधिक होता है. यह आघटन पालतू तथा अवारा कुत्तों दोनों में होता है. पालतू कुत्तों की सभी प्रमुख प्रजातियां कैंसर से प्रभावित होती हैं. कुत्तों में कैंसर आनुवांशिक, विषाणु संक्रमण, हार्मोन असंतुलन, खानपान आदि अनेक कारणों से होते हैं. वयस्क तथा वृद्ध कुत्तों में कैंसर अधिक होता है. इस कारण कुत्तों में पीड़ा के साथ-साथ उनके स्वामी को भी अत्यधिक मानसिक कष्ट होता है.

स्तन कैंसर : महिलाओं की भांति कुतियों में भी स्तन कैंसर का आघटन अत्यधिक होता है. (चित्र-1.1-13) स्तन ग्रंथियों पर विविधाकार, कोमल, गुलाबी घावयुक्त ऊतक वृद्धियां पाई जाती हैं. इनसे रक्तस्राव हो सकता है. उपलब्ध आंकडों के अनुसार दस वर्ष या इनसे अधिक आयु के वृद्ध लगभग 42 प्रतिशत कुत्ते कैंसर से मरते हैं जिनमें से आधे से अधिक (22 प्रतिशत) स्तन कैंसरग्रस्त होते हैं. एक अध्ययन द्वारा यह ज्ञात हुआ कि बीगल नस्ल की 71 प्रतिशत कुतियों में कम से कम एक स्तन कैंसरग्रस्त होता है. कुत्तों की कुछ नस्लों यथा लघु पूडल्स, स्पेनियल, जर्मन शेपर्ड, यार्कशायर टैरियर्स तथा डैसहाउन्ड में स्तन कैंसर का खतरा अधिक होता है जबकि चिहुआहुआ नस्ल की कुतियों में स्तन कैंसर का खतरा कम होता है. मुंबई में सन 2005 में हुए एक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 165 स्तन कैंसर में, 65 प्रतिशत 8-12 वर्ष, 25 प्रतिशत 12-17 वर्ष तथा 10 प्रतिशत 0-8 वर्ष आयु वर्ग में हुए. इस अध्ययन से यह भी विदित हुआ कि प्रभावित नस्लों में पामेरियन (40 प्रतिशत), डाबरमैन (25 प्रतिशत), मांग्रेल्स (15 प्रतिशत), अल्सेसियन (10 प्रतिशत), काकर स्पेनियल तथा डैसहाउन्ड (05 प्रतिशत) थे. कुतियों में 5 जोड़ा स्तन ग्रंथियां होती हैं. प्रायः पिछली स्तन ग्रंथियां कैंसरग्रस्त होती हैं. ये रसौलियां सुदम या दुर्दम प्रकार की

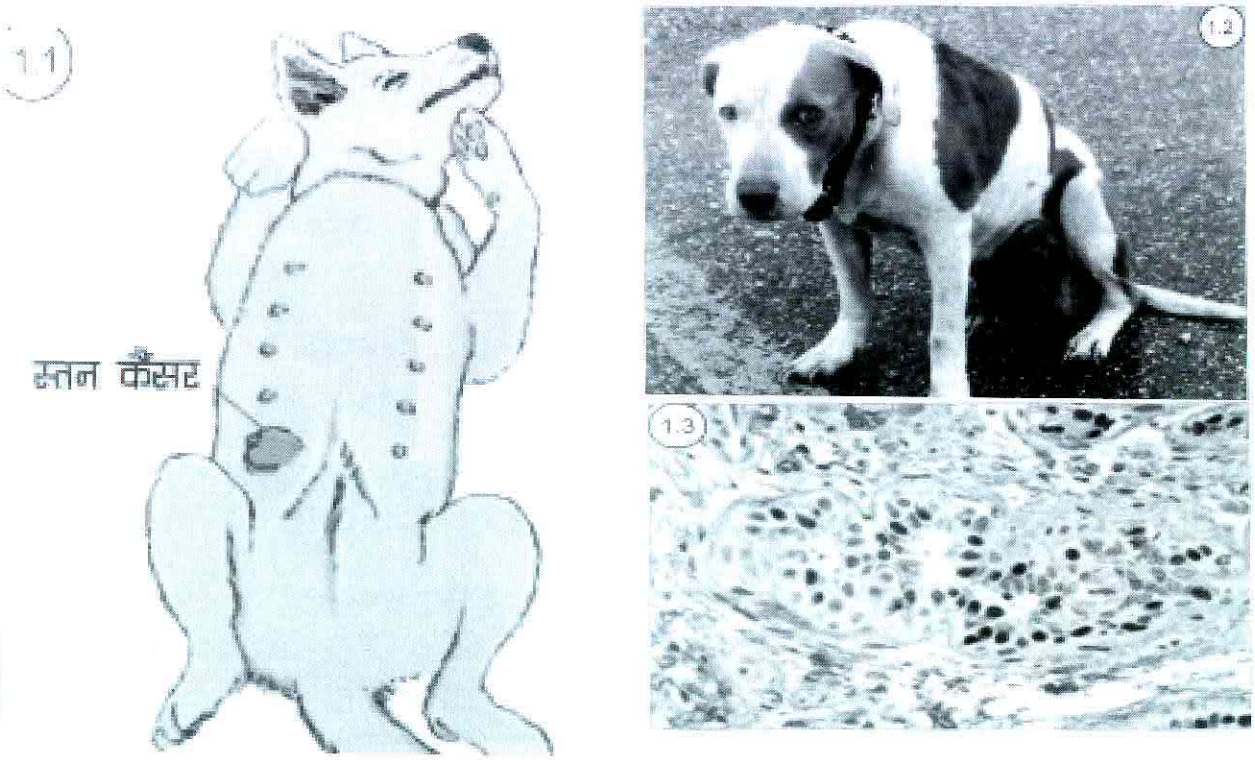

चित्र 1.1 से 1.3 : कुत्तों में कैंसर स्तन कैंसर

होती हैं. दुर्दम रसौलियों का क्षेत्रीय लसिका पर्वो तथा अंगों में विक्षेप होता है. कुत्तों में सुदम की अपेक्षा दुर्दम प्रकार के स्तन कैंसर अधिक होते हैं. ऊतकविकृतिविज्ञानी अध्ययनों द्वारा दुर्दम प्रकार की रसौलियां एडिनोकार्सीनीमा, दुर्दम मिश्रित स्तन कैंसर, ठोस कार्सिनोमा, स्क्वेमस सेल कार्सिनोमा, फाईब्रोसारकोमा, म्युसिनयुक्त कार्सिनोमा आदि होते हैं. विरले ही नर कुत्तों में अवशिष्ट स्तन ग्रंथियों में स्तन कैंसर होता है. कुत्तों के स्तन कैंसर का निदान कोशिकाविज्ञानी, ऊतकविकृतिविज्ञानी तथा ऊतकरसायनविज्ञानी विधियों द्वारा किया जाता है. स्तन कैंसर का उपचार शल्यचिकित्सा द्वारा किया जा सकता है परंतु शल्यचिकित्सा के पश्चात कैंसर पुनः उत्पन्न हो सकता है अतः यह उपचार प्रभावी नहीं है.

त्वचीय कैंसर : कुत्तों में कई प्रकार के त्वचीय कैंसर होते हैं. इनकी त्वचा में तरह-तरह की छोटी या बड़ी विविधाकार वृद्धियां पाई जाती हैं. यदाकदा यह वृहदाकार हो जाती हैं. ऊतकविकृतिविज्ञानी अध्ययनों द्वारा इन्हें पैपिलोमा, स्क्वेमस सेल कार्सीनोमा, बेसल सेल कार्सीनोमा, मिलेनोमा, मिलेनोसार्कोमा आदि के रूप में पहचाना जाता है. शल्यचिकित्सा के अतिरिक्त इनके विशेष उपचार सुलभ नहीं हैं.

त्वचीय तथा मुखीय पैपिलोमता : कुत्तों में दो प्रकार की पैपिलोमता होती है, त्वचीय तथा मुखीय. मुखीय पैपिलोमता अपेक्षाकृत घातक होती है. रसौलियों के कारण कुत्ता ठीक प्रकार से खाना ग्रहण नहीं कर सकता है. त्वचा में विभिन्न प्रकार के मस्से भी पाये जाते हैं. इन दोनों प्रकार की पैपिलोमता का निदान पैपिलोना तथा फाइब्रोपैपिलोमा के रूप में किया जाता है.

संचारणीय वेनेरियल सारकोमा (टी.वी.एस.) : कुत्तों का संरचणीय वेनेरियल सारकोमा (सी.टी.वी.एस.) या संचरणीय वेनेरियल ट्यूमर (टी.वी.टी.) वास्तव में कुत्तों के प्रजनन अंगों की एक बाह्य रसौली है. यह रसौली प्रजननरत आवारा कुत्तों में बहुत आम होती है. (चित्र : 2.1, 2.3) अनियंत्रित प्रजनन के कारण यह कुत्तों की सबसे समस्यात्मक रसौली है. अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पंजाब में 23-28, आंध्र प्रदेश में 28 तथा असम में 43 प्रतिशत तक कुत्ते इस रोग से प्रभावित पाये गये. समस्त भारत से कुत्तों में इस रसौली का आघटन प्रतिवेदित है. रोग का कारण ज्ञात नहीं है. कैंसरजन्य विषाणुओं को रसौली कोशिकाओं में दर्शाया नहीं जा सका है. हालांकि कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि सी-प्रकार के रेट्रो विषाणुओं से यह रोग संचरित होता है. प्रायः यह रसौली 2-5 वर्ष की आयु के प्रजनन में सक्रिय कुत्तों में प्रजनन मौसम में अधिक देखी जाती है. कुतियों में यह रसौली अधिक होती है क्योंकि प्रभावित कुत्ते एक से अधिक कुतियों से प्रजनन करते व रोग संचरित करते हैं. यह रसौली कुत्तों के शिश्न, शिश्नच्छद, शिश्नमुंड आदि में तथा कुतियों की योनि, भग तथा अन्यत्र पायी जाती हैं. यह रसौली रक्ताधिक्य के कारम लाल, गांठोंयुक्त, बहुखण्डीय पैपिलरी, गोभी के फूल जैसी तथा पेंडकलयुक्त होती है. इसका आकार 15 सें.मी.तक हो जाता है. रसौली सख्त,

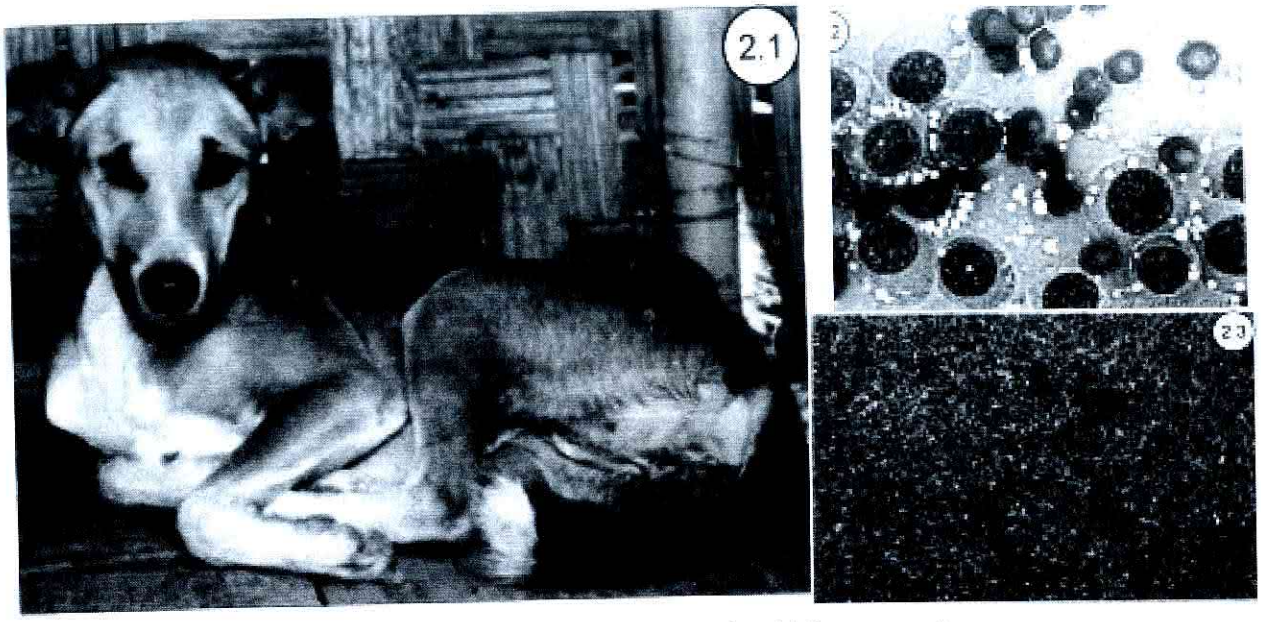

चित्र 2.1 से 2.3 : कुत्तों में संचारणीय वेनेरियल सारकोमा

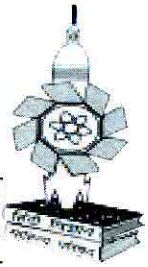

भंगुर, अपरदनयुक्त तथा शोथीय होती है. गलन युक्त रसौली सो चिपचिपा या रक्तीय द्रव बहता रहता है जिससे फर्श, कालीन तथा बिछावन के कपड़े गंदे हो जाते हैं तथा कुत्तों के मालिक परेशान हो जाते हैं. यह रसौली प्रजनन अंगों के अतिरिक्त पीठ, गरदन, पैरों आदि की त्वचा तथा मुंह के चारों ओर संचारित होती है. इसका आकार 6 सें.मी. तक होता है तथा ये सतह से उभरे व चोट लगने पर रक्त स्रावित करते हैं. रसौली का विक्षेप वंक्षण तथा श्रोणिफलक लसिकापर्वो, त्वचा तथा अनेकों अंगों में होता है. ऊतक विकृति विज्ञानी अध्ययन द्वारा यह रसौली राऊंड सेल सारकोमा/रेटीकुलो इंडोथीलियल मूल का अविभेदित राऊंड सेल सारकोमा निदान किया जाता है. इस रसौली की कोशिकाओं के गुणसूत्रों की संरचना तथा संख्या में दोष पाये जाते हैं. इन रसौली कोशिकाओं में 58-59 गुणसूत्र पाये जाते हैं जबकि सामान्यतः कुत्तों की कोशिकाओं में 78 गुणसूत्र होते हैं. रोग का निदान पर्यावरणीय इतिवृत्त, कोशिकाविज्ञानी, जैवऊति परीक्षणों आदि द्वारा किया जाता है. इस रसौली का उपचार शल्यचिकित्सा, रेडियो, इम्यूनो, कीमोथिरेपी आदि द्वारा करते हैं. कई बार रसौली स्वतः भी ठीक हो जाती है. यदि रसौली अत्यधिक विसरित है तो शल्यचिकित्सा द्वारा उपचार संभव नहीं होता है. रसायनिक चिकित्सा के अंतर्गत सायक्लोफास्फामाइड, विनक्रिस्टिन, विनब्लास्टिन आदि प्रयुक्त की जाती हैं. कई बार मिलीजुली चिकित्सा से उपचार किया जाता है. रोग से बचाने हेतु यह आवश्यक है कि कुत्तों के स्वामी प्रजनन करवाते समय यह सुनिश्चित करलें कि कुत्ता/कुतिया इस रसौली से मुक्त हैं. इसके लिए पशुचिकित्सा विशेषज्ञों से कुत्तों का निरीक्षण करवाना चाहिए.

घोड़ों के कैंसर : घोड़ों में सारक्वायड तथा त्वचा के कैंसर अपेक्षाकृत आम होते हैं. इनसे बहुकीमती घोड़ों को पीड़ा होती है, उनकी सुंदरता प्रभावित होती है तथा उनका मूल्य भी घट जाता है. आंखों की पलक में कैंसर होने से दृष्टि प्रभावित हो सकती है तथा मक्खियों/कीटों के आक्रमण से अन्य नेत्रीय समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं. त्वचा के कैंसर से इन्हें गंभीर समस्याएं होती हैं.

सारक्वायड : यह एक स्थानीय, आक्रामक, तन्तुप्रसीय सुदम त्वचीय रसौली होती है. यह घोड़ों, खच्चरों तथा गधों के शरीर की त्वचा के किसी भी भाग में पायी जाती हैं. (चित्र : 3.1. 3.2) यह 3-6 वर्षों के युवा वयस्क घोड़ों में अधिक होते हैं. घोड़ों के कुछ कुल या नस्लें अन्यों की अपेक्षा संक्रमण के प्रति अधिक सुग्राही होती हैं. ये गायों के संपर्क में आने वाले घोड़ों में अधिक होते हैं. सारक्वायड से आर्थिक हानि के अतिरिक्त घोड़ों की सुंदरता प्रभावित होने के साथ-साथ यदि रसौली परिधी, लगाम बांधने के स्थान पर, पिछले पैरों, मुंह के किनारे तथा पलकों पर है तो घोडों का उपयोग प्रभावित होता है. सारक्वायड कई वर्षों तक शांत या स्थिर रहता है तथा फिर यह आसपास की त्वचा में त्वरित व आक्रामक वृद्धि प्रदर्शित करता है. इसका संचरण दृश्य (चोटों) या अदृश्य (कीटजन्य) घावों द्वारा होता है. बी.पी.वी. विषाणु त्वचा की आधारीय किरेटिन युक्त कोशिकाओं तथा अधित्वचीय फाईब्रोब्लास्टों में प्रविष्ट करके रसौली बनाता है. वास्तव में यह एक छोटी एकल या बहुल विविधाकार मस्से जैसी या अर्बुदाकार तंतुऊतक जैसी रचना होती है. यह कठोर, भूरे रंग की होती है तथा चोट लगने से इनसे रक्त निकलता है. इसे छह प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है : अकल्ट, वेरूकोस या वार्टी, नोडुलर, फाईब्रोब्लॉस्टिक, मिश्रित तथा मैलिग्नेंट. भारत में इनका आघटन नागरिक तथा सेना के घोड़ों/खच्चरों में होता पाया गया है. इसका प्रमुख कारण गौवंशीय पैपिलोमा विषाणु (बी.पी.वी.)-1 तथा -2 तथा इनका मिश्रित संक्रमण माना जाता है. इन विषाणुओं के डी.एन.ए. को पी.सी.आर. परीक्षण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है. ऊतक विकृति विज्ञानी अध्ययनों द्वारा इन्हें अधोत्वचीय तन्तुप्रसू का प्रफलन या फाईब्रायड रूप में देखा जाता है जो कि संरचना में फाईब्रोपैपिलोमा से भिन्न होता है.

युवा घोड़ों में सारक्वायड का उपचार लाभप्रद होता है हालांकि यह शत-प्रतिशत सफल नहीं होता है. उपचार के कारण पहले सारक्वायड की दशा खराब होती है तत्पश्चात उसमें सुधार आता है. सारक्वायड का रसौली बंधन, रसायनिक, अतिपात, क्रायो-शल्यचिकित्सा, आत्ममूलक टीका, इम्यूनोमाड्यूलेशन (बी.सी.जी.या इन्टरल्यूकिन-12) विधियों द्वारा चिकित्सा करते हैं. रसायनिक चिकित्सा के अंतर्गत सेस्प्लॉस्टिन से उपचार श्रेष्ठ माना जाता है.

त्वचीय कैंसर : घोड़ों की श्लेष्मकला-त्वचीय संधिस्थलों (नेत्र, योनि आदि) या अन्यत्र त्वचीय कैंसर उत्पन्न होता है. ये प्रायः आंखों या योनि की परिधि क्षेत्र में पाये जाते हैं. ये गोभी के फूल जैसे भूरे, विविधाकार, अपरदनयुक्त/अपरदन रहित, कठोर या भंगुर, अनियंत्रित वृद्धियां होती हैं. चोट लगने पर इनसे रक्तस्राव होता है. आंखों की पलक पर होने के कारण घोड़ों की दृष्टि प्रभावित होती है. कई बार इसके घावों पर मख्खियों के अण्डे/मैगेट आदि से घाव जटिल बन जाते हैं. कैंसर के योनिक्षेत्र परिधि में होने के कारण इन्हें स्क्वेमस सेल कार्सिनोमा निदान किया जाता है. इस अवस्था

का कोई प्रभावी उपचार नहीं है.

भेड़-बकरियों के कैंसर : भेड़ों में फेफड़ों का कैंसर अविवंशीय श्वसनी एडिनोमा, एडिनोमता, एडिनोकार्सिनोमा या जैग्जैक्टी आदि अनेक नामों से जाना जाता है. यह भेड़ों तथा यदाकदा बकरियों का विशिष्ठ, चिरकारी, संक्रामक फेफड़ों का कैंसर है. भारत के अधिकांश प्रांतों से इस रोग के आघटन प्रतिवेदित हैं. पशु जैवप्रौद्योगिकी के मील के पत्थर डाली नामक प्रथम क्लोन्ड भेड़ की मृत्यु इसी रोग से हुई थी. ऊतकविकृतिविज्ञानी दृष्टि से यह मनुष्यों के सबसे आम फेफड़ों के ब्रांक्योलर कार्सिनोमा कैंसर के समान है. रोग का कारण एक रेट्रो विषाणु है जिसे जैग्जैक्टी शीप रेट्रो विषाणु (जे.एस.आर.वी.) कहते हैं. इस रोग को प्रगमनीय दुर्बलता, गुप्त श्वसनी प्रतिबल, अत्यधिक बढ़ी श्वसन दर, नम रेल्स तथा नाक से म्यूसिन जैसा द्रव स्राव निकलने जैसे लक्षणों से पहचाना जा सकता है. इसमें ज्वर नहीं पाया जाता है. चूंकि यह मन्द विषाणु रोग है, अतः इसका ऊष्मायन काल 8-24 माह हो सकता है. मृत पशुओं के फेफड़ों में बहुकेंद्रीय रसौलियां पाई जाती हैं. इनमें से कुछ डिस्क्रीट गांठें होती हैं जबकि अन्य फेफड़े के आधे खण्ड को प्रभावित करता है. जे.एस.आर.वी. विषाणु फेफड़े की कूपिकाओं की टाईप-2 तथा क्लारा नामक कोशिकाओं को प्रभावित करता है. शवपरीक्षण करने पर फेफड़ों के मध्यछद (डायफ्रैगमैटिक) खण्ड के अग्र तथा अग्र-अभ्युदर में क्षतियां मिलती हैं. फेफड़े आकार में अत्यधिक बड़े तथा सघन होते हैं. इनमें दो प्रकार की क्षतियां पाई जाती हैं. प्रथम प्रकार में भूरे-श्वेत या हल्के पीले रंग की चकत्तेदार या वृहदाकार थोड़े कठोर क्षेत्र पाए जाते हैं. दूसरे प्रकार की क्षतियां एक या दोनों फेफड़ों में, एकल या बहुल, उभरी हुई गांठें पाई जाती हैं. ऊतक विकृति विज्ञानी विधि द्वारा सूक्ष्मदर्शी में जांच करने पर कूपिकाओं, इसकी नलिकाओं, श्वसनिकाओं तथा श्वसनी में क्यूबायडल तथा काल्मनर कोशिकाओं का प्रखर प्रफलन पाया जाता है. इन कैंसर कोशिकाओं का फेफड़ों की क्षेत्रीय लसिकापर्वों में विक्षेप पाया जाता है. जीवित पशुओं में इनका निदान दुष्कर होता है. कृषक 'व्हील बैरो परीक्षण' द्वारा इस रोग का निदान करते हैं. इसके अंतर्गत भेड़ों को उसके पिछले पैरों से उठाने पर उसकी नाक से

चित्र 3.1 से 3.2 : घोड़ों में सारक्वायड

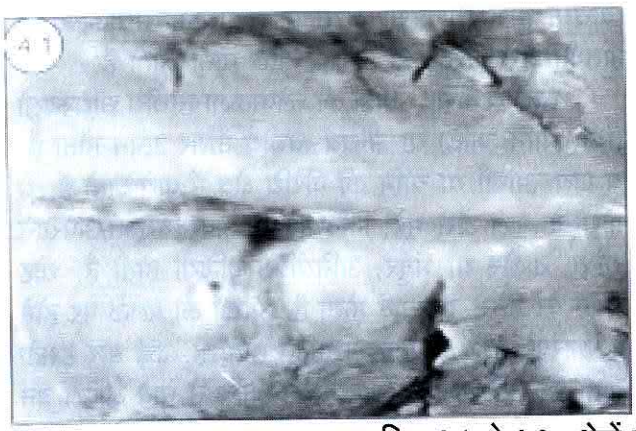

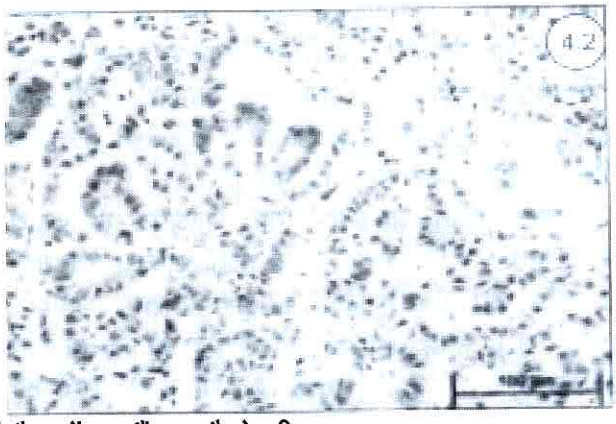

चित्र 4.1 से 4.2 : भेड़ों में फैफड़ों का कैंसर जैग्जेक्टी

म्यूसिन जैसा फेफड़ों में पाया जाने वाला द्रव बाहर निकलता है. इस पदार्थ द्वारा ही संक्रमण फैलता है. शव तथा ऊतकविकृतिविज्ञानी परीक्षण रोग निदान के स्वर्ण परीक्षण हैं. रोग का विशिष्ट उपचार तथा बचाव के उपाय सुलभ नहीं है.

गाय-भैंसों के कैंसर : गाय-भैंसों में कई प्रकार के कैंसर होते हैं जिनमें बैलों में सींगों के कैंसर, आंख का कैंसर, पर्वतीय गौपशुओं में मूत्राशय का कैंसर, ल्यूकोसिस या लिम्फोसारकोमा, दक्षिण भारत के पशुओं में इथमायड का कैंसर तथा मस्से या पैपिलोमा (त्वचीय तथा थनीय) आदि उल्लेखनीय हैं. ये कैंसर विभिन्न कारणों अनुवांशिक, विषाणु संक्रमणों, हार्मोन असंतुलन, विकिरण तथा चिरकारी क्षोभ आदि से होते हैं. वृद्धायु तथा कुछ अन्य कारण पशुओं में कैंसर जनन की सुग्राहिता बढ़ाते हैं. इन कैंसरों से पशुओं को पीड़ा, खेती के कार्य तथा दुग्ध उत्पादन में प्रभाव तथा कृषकों को मानसिक कष्ट तथा आर्थिक हानि होती है.

सींगों के कैंसर : सींगों का कैंसर भारतीय गौवंशीय पशुओं तथा यदाकदा भैंसों में होता है. (चित्र : 5.1) अन्यत्र

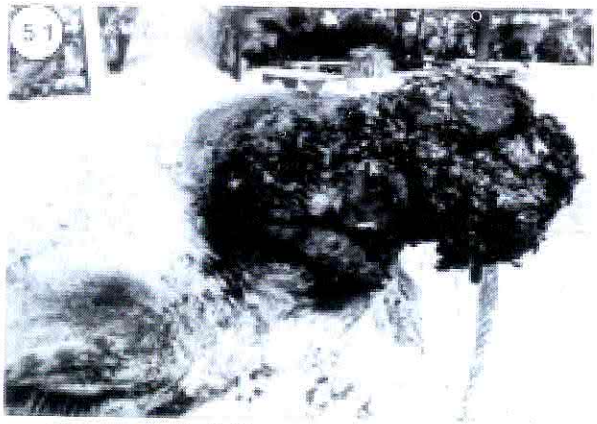

चित्र 5.1 : बैलों में सींगों का कैंसर

यह कैंसर विरल है क्योंकि विदेशों में पशुओं को उनके संपूर्ण जीवन काल तक नहीं रखा जाता है तथा उनका सींगरोधन भी किया जाता है. इसके विपरीत भारत में उन्नत देशी नस्लों के बड़े सींग गौपशुओं की शान माने जाते हैं. गायों की अपेक्षा यह रोग 8-10 वर्ष या अधिक आयु के बैलों में अधिक होता है. सांड़ों में भी यह रोग होता पाया गया है. भैंसों में भी यह रोग यदाकदा होता है. इस कैंसर का कारण चिरकारी क्षोभन (हल के जुआ की रगड़ से उत्पन्न), हार्मोन असंतुलन (बैलों को बधिया करने से उत्पन्न), विकिरण तथा विषाणु संक्रमण बताया जाता है. कुछ कृषक सुंदरता हेतु बैलों के सींगों को इनेमल पेंटों से रंगते हैं. पेंट में उपस्थित कैंसरजन्य रसायन इसका कारण माना जाता है. रोग के कारण पशु कमजोर हो जाता है तथा अंततः उसकी मृत्यु तक हो जाती है.

वास्तव में यह कैंसर सींग तथा सिर के संधिस्थल पर स्थित स्क्वैमस कोशिका से उत्पन्न होता है जिसके बढ़ने से सींग कमजोर, हिलने लगती तथा आधार से टूटकर गिर जाती है. सींग के टूटने पर रक्तस्राव होता है. यहां पर कैंसर की तेजी से वृद्धि होती है जोकि गोभी के फूल जैसी सफेद या भूरे रंग की तथा भंगुर होती है. इसमें गलन, मैगट्स संक्रमण आदि के कारम बदबू आती है. मक्खियों के लगने पर पशु सिर झटकता है जिससे रक्तस्राव होता है. विरले ही दोनों सींगों में एक साथ कैंसर होता है. ऊतकविकृतिविज्ञानी अध्ययन द्वारा यह स्क्वेमस सेल कार्सिनोमा के रूप में निदान किया जाता है. इसमें 'इपीथीलियल पर्ल' पाई जाती हैं. कैंसर का विक्षेप सींगों के आसपास के ऊतक तथा सिर एवं ग्रीवा की क्षेत्रीय लसिकापर्वों में होता है.

रोग का कोई प्रभावी उपचार उपलब्ध नहीं है. शल्यक्रिया द्वारा कैंसर काटकर निकाल दिया जाता है. ग्रामीण क्षेत्रों में रसौली को गर्म लोहे से दागकर, कास्टिक, पोटाश आदि से जला दिया जाता है. घाव की टिंचर बेंजोइनको तथा जीवाणुनाशकों से ड्रेसिंग की जाती है परंतु कैंसर पुनः हो जाता है. मैगट आदि से बचाने के लिए घाव की तारपीन के तेल से ड्रेसिंग की जाती है. बचाव हेतु बछड़ों में सींगरोधन किया जाता है. कहा जाता है 'न रहेगी सींग, न होगा सींगों का कैंसर'. कई बार कृषक बड़े सींग वाले पशुओं की नस्ल की पहचान मानते हैं तथा उन्हें सींगरोधन स्वीकार नहीं है. सींगों को पेंट से नहीं पोतना चाहिए. पेंट में उपस्थित कैंसरजन्य रसायन इसका कारण माना जाता है.

आंखों का कैंसर : प्रायः वयस्क/वृद्ध बैलों तथा यदाकदा गायों में आंखों का कैंसर होता है. (चित्र : 6.1) यह आंखों की पलकों, तृतीय झिल्ली, श्वेतपटल आदि में होता है. इसका कारण चिरकारी क्षोभन, विकिरण तथा विषाणु संक्रमण बताया जाता है. भारत के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा कई देशों से यह रोग आलेखित हैं. ऊतकविकृतिविज्ञानी अध्ययन द्वारा इसे हार्न कैंसर की भांति स्क्वैमस सेल कार्सीनोमा निदान किया जाता है. रोग का कोई प्रभावी उपचार तथा बचाव नहीं है.

गोवंशीय ल्यूकोसिस : स्थानिक गौवंशीय ल्यूकोसिस (ई.बी.एल.) गोवंशीय विशेषकर विदेशी नस्ल के गौपशुओं में होने वाला एक संक्रामक रोग है. इसका कारण बाह्यजन्य सी-प्रकार गौवंशीय ल्यूकीमिया विषाणु (बी.एल.वी.) संक्रमण है. यह रूग्णता गौवंशीय लिम्फोसारकोमा भी कहलाती है.

(चित्र : 7.1, 7.3) एक अन्य असंक्रामक अवस्था स्फुटिक गौवंशीय ल्यूकोसिस (एस.बी.एल.) होती है जोकि संचरणीय नहीं होती है. यह तीन प्रकार

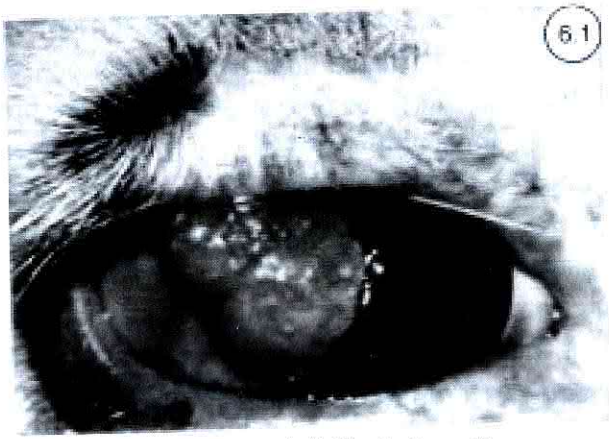

चित्र 6.1 : बैलों में आंखों का कैंसर

की होती है : बछड़ा, थायमिक और त्वचीय. इस रूग्णता में रक्त में अपरिपक्व कैंसरयुक्त रक्त लसकोशिकाओं की संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है जो कि निरंतर बनी रहती हैं. सामान्यतया रक्त में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या 6-10 हजार से बढ़कर 70-80 हजार प्रति घन कि.मी. हो जाती है. प्रभावित पशुओं के रक्तालेप के विभेदात्मक श्वेतरक्त कोशिका की गणना करने पर अधिक संख्या में कैंसरयुक्त अपरिपक्व लसिकाभ श्वेतकोशिकाएं पायी जाती हैं. यह कैंसर की पूर्व या सुदम प्रकार की अवस्था है. इनमें से मात्र 5 प्रतिशत वृत्तांत लिम्फोसारकोमा की दुर्दम अवस्था में परिवर्तित होते हैं. ऐसे प्रभावित पशुओं के शरीर की विभिन्न लसिकापर्व वृहदाकार हो जाती हैं. अन्य लसिकाभ अंगों (तिल्लीसहित) का आकार भी बढ़ जाता है. रोग के कारण पशु की उत्पादकता तथा प्रजनन प्रभावित होती है. रोग का निदान नैदानिक रक्त, ऊतकविकृतिविज्ञानी और एलाइसा द्वारा जीपी 51, जीपी 30 तथा जीपी 24 प्रोटीन के विरूद्ध प्रतिपिंडों का निदान, बी.एल.वी. विषाणु के डी.एन.ए. के निदान हेतु पी.सी.आर. तथा अन्य अणुविज्ञानी परीक्षण किये जाते हैं.

गायों की भांति भारतीय भैसों में भी लिम्फोसारकोमा पाया जाता है जो कि बी.एल.वी. के समतुल्य विषाणु द्वारा उत्पन्न होता पाया गया है. इस पर भारत में सन 1970 के दशक में कुछ शोधकार्य हुए थे तथा वर्तमान में इन पर और अध्ययनों की आवश्यकता है. इस रोग का विशिष्ठ उपचार उपलब्ध नहीं है. मात्र लक्षणिक तथा जीवन समर्थन चिकित्सा की जाती है. रोग के बचाव हेतु टीका भी सुलभ नहीं है. संदिग्ध झुंडों में नियमित अंतराल पर गौपशुओं का जीपी 51 के विरूद्ध प्रतिपिंडों का परीक्षण तथा धनात्मक पशुओं का पृथकीकरण तथा उन्मूलन किया जाता है. रोग के कारण इन पशुओं तथा उनके उत्पादों को रोगमुक्त देशों में निर्यात संभवन हीं है.

इथमायड कार्सिनोमा : भारत के चार दक्षिणी राज्यों

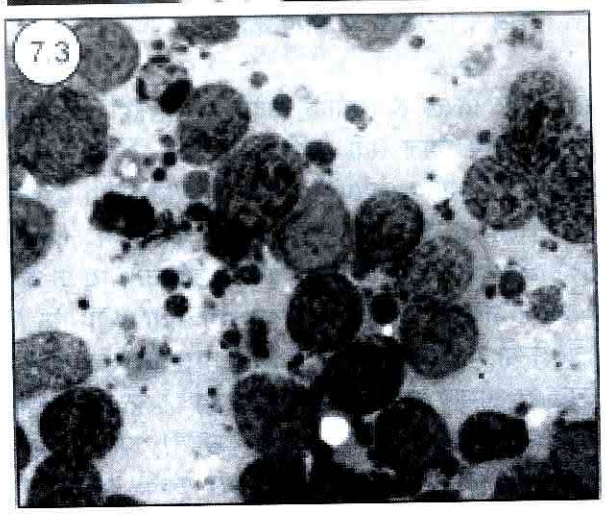

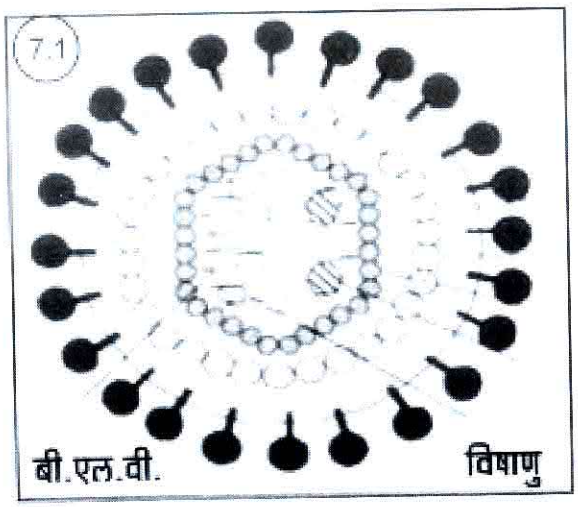

चित्र 7.1 से 7.3 : गायों में ल्यूकोसिस या लिम्फोसारकोमा

जैसे केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश के गोवंशीय तथा कुछ अन्य प्रजाति के पालतू पशुओं के नासिका की इथमायड अस्थि की उपकला कोशिकाओं में कैंसर उत्पन्न होता है जिसे इथमायड कार्सिनोमा कहते हैं. नासिकापथ में इस कैंसरयुक्त वृद्धि के कारण पशुओं को सांस लेने में कठिनाई, पीड़ा, ऊतक वृद्धि के कारण अस्थियों में विकार तथा बाह्य सूजन उत्पन्न होती है. इस रोग का कारण विषाणु तथा वातावरणीय अफ्लाविष माने जाते हैं. रोग का कोई प्रभावी उपचार तथा नियंत्रण के उपाय विदित नहीं हैं.

पर्वतीय गोवंशीय पशुओं में मूत्राशय का कैंसर : भारत के कुछ उच्चपर्वतीय क्षेत्रों (हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, दार्जिलिंग, पश्चिमी बंगाल तथा नीलगिरी पर्वत, तमिलनाडु) आदि में गौवंशीय पशुओं के मूत्राशय में कई प्रकार (उपकलीय/मीजेनकाइमल) के कैंसर होते हैं. (चित्र : 8.1, 8.3) इसके दो कारण हैं : प्रथम उन क्षेत्रों में पायी जाने वाली ब्रेकन फर्न विषाक्तता तता दूसरा कारण गौवंशीय पैपिलोमा विषाणु (बी.पी.वी.-1 तथा - 2) संक्रमण होता है. पर्वतों में अनेकों प्रकार की फर्नें पायी जाती हैं जिनमें ब्रेकन फर्न (टेरिडियम एक्यूलाइनम) इस रोग का प्रमुख कारण है. इस तथा कई अन्य फर्नों में टिक्यूलोसाइड नामक विष पाया जाता है, जिसमें कैंसरजन्यता, म्यूटोजन्यता तथा प्रतिरक्षा अवसादन आदि गुण होते हैं. यह विष क्षारीय गौमूत्र में मूत्राशय में कैंसर उत्पन्न करता है. गौवंशीय पैपिलोमा विषाणु-2 मूत्राशय उपकला कोशिकाओं से विशेष स्नेह रखता है. इन विषाणुओं का डी.एन.ए. पी.सी.आर. विधि द्वारा मूत्राशय कैंसर ऊतक में प्रदर्शित किया जा सकता है.

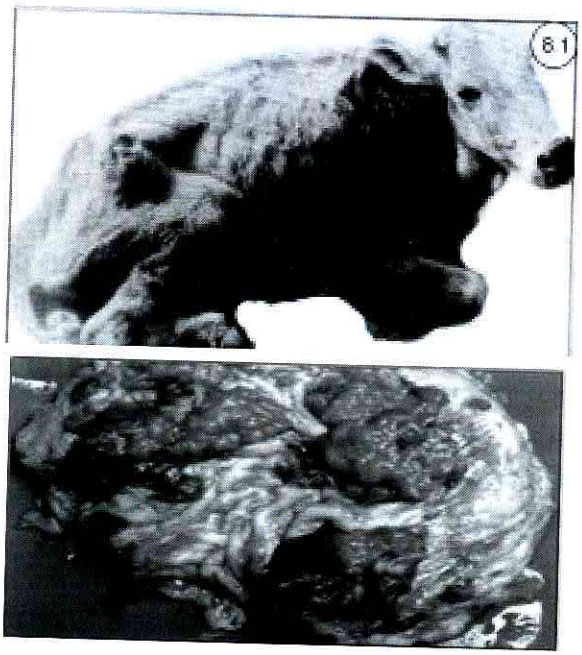

भारत में पर्वतीय पशुओं का यह रोग 'स्थानिक गौवंशीय रक्तमूत्रमेह' के नाम से जाना जाता है क्योंकि रोगी पशु के मूत्र में रक्त आता है. इस कारण पर्वतीय गौपशु कमजोर, खेती के कार्यों हेतु अयोग्य तथा उनका दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है. अन्ततः ये पशु कालग्रस्त हो जाते हैं, जिससे पर्वतीय कृषकों को अत्यधिक आर्थिक हानि होती है. जीवित बचे पशु आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी होते हैं. इस असाध्य रूग्णता का कोई प्रभावी उपचार नहीं है. लक्षणात्मक उपचार किया जा सकता है परन्तु उसका विशेष लाभ नहीं होता है. विदेशों में इस रसौली हेतु टीके विकसित किये गये हैं. पर्वतीय क्षेत्रों के गोपशुओं को ब्रेकन फर्न न खिलाने, उसे बिछाली के रूप में प्रयोग न करने तथा चरागाहों से इनका विनाश करने हेतु जागरूकता अभियान चलाये जाने चाहिए.

गौवंशीय पैपीलोमता : गौवंशीय तथा भैंसवंशीय पशुओं में गौवंशीय पैपीलोमा विषाणु (बी.पी.वी.-1 से 13) त्वचीय तथा श्लेषमकलीय मस्से तथा यदाकदा कैंसर उत्पन्न करते है. (चित्र : 9.1, 9.4) गायों तथा भैंसों के अतिरिक्त घोड़ों में ये विषाणु सारक्वायड तथा याकों में त्वचीय मस्से उत्पन्न करता है. प्रायः यह रूगणता छोटे बछड़ों, बड़ी बछियों तथा गाय-भैंसों में होती है. त्वचीय मस्से आंखों के चारों ओर, सिर, गर्दन, शरीर के विभिन्न भागों, पैरों, थनों आदि में होते हैं. ये मस्से छोटे, इक्का-दुक्का, अनेक व आपस में जुड़े हुए, वृहदाकार, सफेद से भूरे या काले, कठोर या भंगुर (टूटने वाले) होते हैं. थनों पर चावल के दानों जैसे छोटे से लेकर बड़ी विविधाकार वृद्धियां पाई जाती हैं. कई बार कील जैसी लम्बी संरचनाएं मिलती हैं. थन के इन मस्सों के कारण गायों को पीड़ा, दूध दुहने में कठिनाई, बछड़े दूध नहीं पी पाते, थनैला तथा स्थाई रूप से थन खराब हो सकते हैं.

चित्र 8.1 से 8.3 : पर्वतीय गौपशुओं में मूत्राशय का कैंसर

त्वचीय मस्सों के टूटने से पशुओं को पीड़ा, रक्तस्राव, मक्खियों का प्रकोप, पशुओं में झुंझलाहटपन तथा दूध उत्पादन में कमी आती हैं. त्वचीय मस्से सुदम प्रकार की रसौलियां हैं. ऊतकविकृतिविज्ञानी परीक्षण द्वारा इन्हें फाईब्रोपैपिलोमा निदान किया जाता है. थन के मस्से पैपिलोमा निदान किये जाते हैं. थन के मस्सों में रक्त की आपूर्ति कम होती है अतः ये शीघ्रता से ठीक नहीं होते हैं. अन्य मस्से स्वतः ठीक हो जाते हैं. विरले ही ये पशुओं से ठीक नहीं होते हैं. अन्य मस्से स्वतः ठीक हो जाते हैं. विरले ही ये पशुओं के शरीर पर बने रहते हैं तथा इनकी अत्यधिक वृद्धि होती है व भांति तरह-तरह के संक्रामक एवं असंक्रामक रोगों तथा कैंसर से पीड़ित होते हैं. इनमें वहीं कैंसर होते हैं जो मनुष्यों में होते हैं. मनुष्यों के कैंसर के निदान तथा उपचार हेतु आधुनिक विधियां उपलब्ध हैं. हालांकि ये विधियां अत्यधिक मंहगी हैं जिसे अधिकांश आम लोग वहन नहीं कर सकते हैं. इसकी अपेक्षा पशुओं के कैंसरों के निदान हेतु आधुनिक विधियां तथा प्रौद्योगिकी उपलब्ध नहीं हैं. इनका विशिष्ट उपचार तो बहुत ही पिछड़ा है तथा नहीं के बराबर उपलब्ध हैं. भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली (उ.प्र.) तथा चेन्नई, मुंबई, बेंगलौर, हिसार, लुधियाना आदि स्थानों पर स्थित पशुचिकित्सा विश्वविद्यालयों में इस

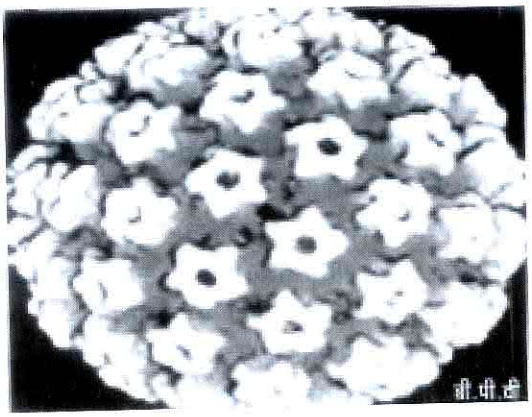

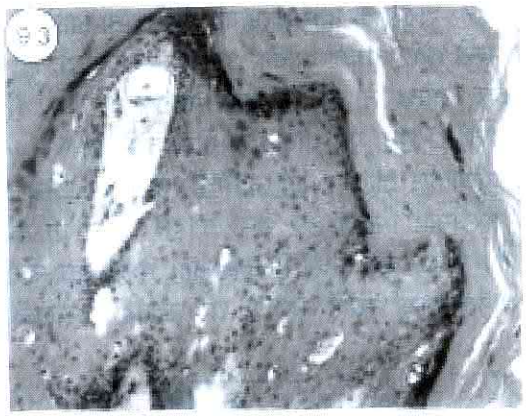

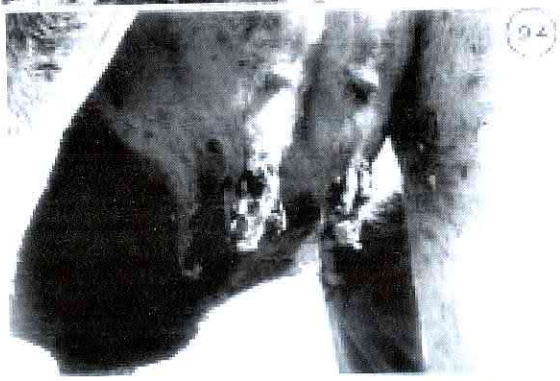

चित्र 9.1 से 9.4 : गायों में त्वचीय तथा थन का मस्सा

पशुओं के पूरे शरीर में अत्यधिक फैल जाते हैं. मस्सों का सरलता से थुजा-30 होमियोपैथी औषधि से उपचार किया जा सकता है. इसके अतिरिक्त आत्ममूलक (मस्से का दस प्रतिशत घोल, फिनाल द्वारा उपचारित) या रक्तजन्य टीके से भी मस्सों का सफलतापूर्वक इलाज किया जा सकता है. इन पंक्तियों के लेखक की प्रयोगशाला में फिनॉल उपचारिक तथा बी.ई.आई.युक्त टीके का विकास कर मस्सों का सफलतापूर्वक उपचार किया गया. यह टीका बचावात्मक उपाय के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है.

निष्कर्ष : बेजुबान पालतू तथा कृषि पशु, मनुष्यों की विषय पर कुछ शोध व सेवा कार्य हो रहे हैं. पशुओं के कैंसर पर अधिक शोध की आवश्यकता है जिसके लिए सरकार को अधिक धन सुलभ करवाना होगा. हमें कैंसर से पीड़ित पशुओं का दर्द समझना होगा तथा उनके साथ अधिक मानवतापूर्वक व्यवहार करना होगा. सभी को पशुस्वामियों के मानसिक कष्ट को भी समझना होगा. हमें पशुओं के प्रति उत्तम व्यवहार व स्नेह भी रखना होगा. यही भारतीय संस्कृति भी है.

(अधिकांश चित्र इंटरनेट से साभार)

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2013 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

भारत में नवोन्मेष

मनीष मोहन गोरे
विज्ञान प्रसार, ए-50, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा-201309 (उ.प्र.)

नवप्रवर्तन, नवाचार और नवोन्मेष ये सभी मनुष्य के सृजनशील मन के पर्याय हैं. मानव मन जिज्ञासा और सृजनशीलता से भरा होता है. बच्चों और युवाओं में इसका बृहत्तर स्तर विद्यमान होता है इसलिए देश तथा समाज को इनसे बड़ी उम्मीदें लगी होती हैं. भारत के पूर्व राष्ट्रपति भारत रत्न वैज्ञानिक डॉ.कलाम सही कहते हैं 'सीखने से सृजनशीलता का विकास होता है, सृजनशीलता नए विचारों को जन्म देती है. विचारों से ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान हमें महान बनाता है.'

सभी जानते हैं कि हर बच्चा जिज्ञासा की सहज प्रवृत्ति के साथ जन्म लेता है इसलिए सभी बच्चों में हर नई चीज या घटना के लिए कौतूहल मौजूद होता है. बच्चा किसी भी वस्तु/घटना के संबंध में क्या, क्यों, कैसे, कहां और कब जानने के लिए तत्पर रहता है. असल मायने में यही वैज्ञानिक प्रवृत्ति या वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है जो वैज्ञानिक विधि से जन्म लेता है. संकल्पना, अवलोकन, प्रयोग, विश्लेषण और निष्कर्ष - ये पांच मुख्य चरण होते हैं वैज्ञानिक विधि जो हर एक खोज या आविष्कार के अनिवार्य करक होते हैं. गाहे-बगाहे हर खोजकर्ता, आविष्कारक और वैज्ञानिक इन्हीं चरणों से गुजरते हुए अपनी खोज या आविष्कार को दुनिया के सामने ला पाता है.

अगर हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की बात करें

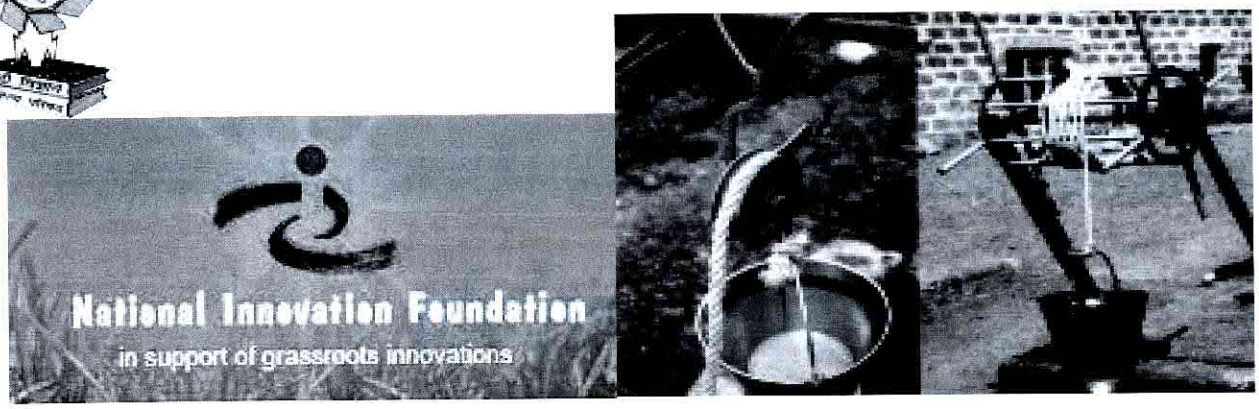

तो लोगों के मन में एक भ्रम उठता है कि इसे हर किसी पर थोपने की क्या जरूरत है या फिर यह तो विज्ञान एवं इस उद्योग से जुड़े लोगों के काम की बात है, आम आदमी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से क्या लेना-देना.

इसे यू समझने की कोशिश करते हैं. जाने-अनजाने में अनेक लोग अपने जीवन के छोटे-बड़े निर्णय लेने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लेते हैं. पुराने अनुभवों/साक्ष्यों, रिश्तेदार या मित्र की राय लेकर तथा सभी सकारात्मक/नकारात्मक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए यदि कोई व्यक्ति किसी ठोस नतीजे तक पहुंचता है तब कहेंगे कि उस व्यक्ति द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काम लिया जा रहा है. उदाहरण के लिए असंख्य किसान (जिनका विज्ञान की शिक्षा, वैज्ञानिक विधि या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई वास्ता नहीं पड़ता) अपने पूर्व अनुभवों के ही आधार पर अपने खेतों में बीज की बुआई, सिंचाई और बारिश का पूर्वानुमान करके उपज की कटाई आदि करता है. असल में किसान अनजाने में वैज्ञानिक विधि का सहारा लेते हैं अर्थात उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण विद्यमान होता है.

यह तो हुआ कि अनजाने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग जनसामान्य आदि समाज के सभी वर्गों को शिक्षा-प्रशिक्षण के द्वारा वैज्ञानिक विधि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने (जीवन के हर क्षेत्र में) पर बल दिया जाए तो इससे देश के विकास में तेजी आएगी.

जिज्ञासा और नवोन्मेष एक दूसरे के पूरक होते हैं. इन दोनों में नया विचार/सृजन छिपा है. इनके प्रोत्साहन से नई विचारधारा/नई खोज जन्म लेती है या प्रकृति में छिपे एक और रहस्य के ऊपर से परदा उठ जाता है. जिज्ञासा ही हर मनुष्य को दूसरे से अलग करती है.

तर्क की कसौटी पर कसने के बाद और पूर्व अनुभवों के आधार पर जब कोई व्यक्ति किसी नतीजे पर पहुंचता है तो उसका निर्णय तर्कसंगत होता है. इस प्रक्रिया को अपनाने की प्रवृत्ति को ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण या सोच या नजरिया (Scientific temper) कहते हैं. इस प्रकार का दृष्टिकोण शिक्षित-अशिक्षित दोनों में पाया जा सकता है. वैज्ञानिक दृष्टिकोण ऐसे व्यक्तियों में भी पाया जा सकता है जिन्होंने विज्ञान की कोई औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की हो इसलिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विज्ञान से कोई खास संबंध नहीं होता है. दिन-प्रतिदिन के निर्णय लेते समय विज्ञान विधि का अनजाने में प्रयोग करना अशिक्षित व्यक्तियों को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्मत बनाता है. ऐसे व्यक्ति अपने आस-पास की गतिविधियों को समझने और अपने दायित्वों का निर्वहन करते समय तर्कसंगत निर्णय लेता है.

समाज और देश के विकास के लिए जरूरी है कि वहां के नागरिक जिज्ञासु हों और उनमें नवोन्मेष की वृत्ति मौजूद हो.

नवोन्मेष में एक नया विचार निहित होता है जिसे मानव कल्याण में उपयोग किया जाए तो उसकी प्रासंगिकता बढ़ जाती है. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग का एक स्वायत्त संस्थान नेशनल इनोवेशन फाउंडेशन (अहमदाबाद) लोगों के नवोन्मेषों को प्रोत्साहन देने की दिशा में काम कर रहा है. तृणमूल नवोन्मेषों (grassroot innovations) को पहचान कर उन्हें अंतर्राष्ट्रीय फलक पर मान्यता दिलाना भी इस संस्थान का एक अहम उद्देश्य है.

बच्चों की उत्कंठा : इग्नाइट

स्कूली बच्चों के मौलिक प्रौद्योगिकीय विचारों और नवोन्मेषों को प्रोत्साहित करने के लिए नेशनल इनोवेशन फाऊंडेशन हर वर्ष इग्नाइट (IGNITE) नामक एक प्रतियोगिता का आयोजन करता है. बारहवीं कक्षा तक के स्कूली विद्यार्थी और स्कूल से बाहर के बच्चे भी इस प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए अपनी एंट्री एनआईएफ के पते पर या मेल के जरिए ignite14@nifindia पर भेज सकते हैं. प्रतिभागियों को अपने विचार/नवोन्मेष के साथ अपनी आयु, कक्षा, स्कूल का नाम और पता, घर का पता तथा संपर्क सूत्र अवश्य

भेजना है. अधिक जानकारी के लिए एनआईएफ का वेबसाइट www.nif.org.in देख सकते हैं.

इंस्पायर : देश की युवा शक्ति (10 से 32 वर्ष के आयु वर्ग वाले प्रतिभाशाली विद्यार्थियों) को विज्ञान के अध्ययन तथा अनुसंधान में अपना कैरियर बनाने के लिए भारत सरकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने 2011 से एक महत्वाकांक्षी योजना 'इंस्पायर' (अभिप्रेरित अनुसंधान के लिए विज्ञान खोज में नवोन्मेष) की शुरूआत की है. इस योजना के बड़े ही सुखद परिणाम सामने आने लगे हैं. जैसे कि करीब 1.9 लाख विद्यार्थियों ने इंस्पायर की इंटर्नशिप कार्यशालाओं में हिस्सा लिया है. उच्च शिक्षा के लिए लगभग 2800 छात्रवृत्तियाँ और 2900 फेलोशिप अभी तक दिए गए हैं तथा 378 विद्यार्थियों को सुनिश्चित कैरियर अवसर के लिए चयनित किया गया है.

इंस्पायर कार्यक्रम विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग के वर्तमान सचिव डॉ.टी.रामासामी की उर्वर सोच का नतीजा है.

नवोन्मेष नीति 2013 : भारत सरकार का अभिनव पहल

भारतीय संसद ने 1958 ई. में राष्ट्रीय विज्ञान नीति (Science Policy Resolution) लागू किया था और इसमें वैज्ञानिक अनुसंध्हान के प्रोत्साहन तथा ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करने का उद्देश्य रखा था.

जन सामान्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कसंगत सोच-विचार को प्रोत्साहन देने के लिए भारतीय संविधान के मूलभूत कर्तव्य के अंतर्गत अनुच्छेद 51a(h) को जोड़ा गया. इसमें स्पष्ट उल्लेख है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करना भारत के नागरिकों के मूल कर्तव्य है.

विज्ञान के बदलते परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार वर्ष 2003 में विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति लेकर आई थी जिसका मुख्य मकसद था कि मानवजाति के समग्र विकास के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी में भारत वांछित प्रगति करे और एक ग्लोबल प्लेयर की भूमिका का निर्वहन करे.

पिछले वर्ष 3 से 7 जनवरी 2013 को कोलकाता में आयोजित 100वें भारतीय विज्ञान कांग्रेस में भारत सरकार के विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवोन्मेष नीति 2013 को जारी किया. इस नीति के अंतर्गत देश में समग्र विकास के लिए अनुसंधान में उत्कृष्टता और प्रासंगिकता के साथ-साथ नवोन्मेष को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य तय किया गया है.

भारत के पास एक समृद्ध वैज्ञानिक विरासत है. सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात हुआ है कि

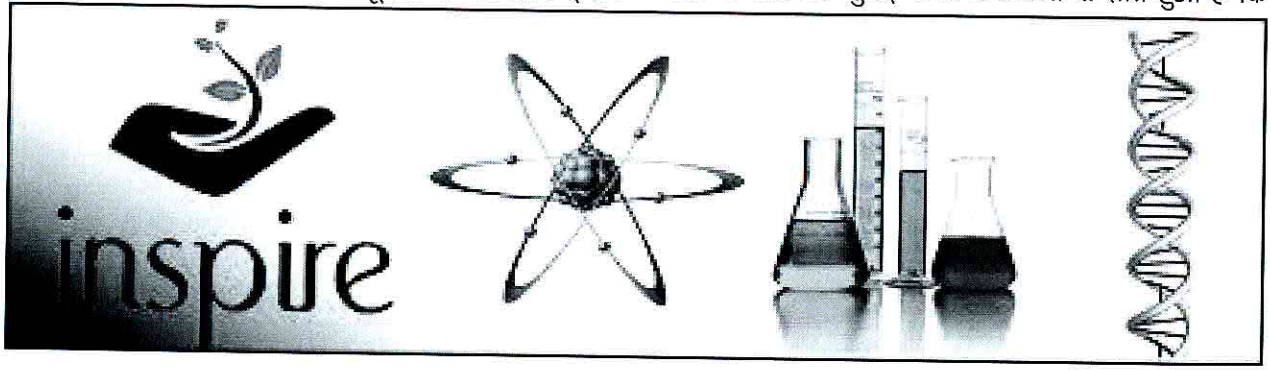

उस जमाने के लोग वैज्ञानिक विधि को अपने नगरीय विकास, स्वच्छता और रहन-सहन में व्यापक रूप से अपनाते थे. चरक, सुश्रुत, वाराहमिहिर, आर्यभट्ट ने चिकित्सा, खगोलिकी तथा गणित के क्षेत्र में अभूतपूर्व संकल्पनाएं दुनिया के सामने रखी थीं. गौतम बुद्ध ने भी अपने विचार में कहा था कि गुरू की बात केवल इसलिए आंख मूंदकर मत मानो क्योंकि वह श्रेष्ठ है, परंतु उसकी कही बातों को पहले तर्क की कसौटी पर कसो. अगर निष्कर्ष उचित हो तब ही उसे अंगीकार करो.

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समांतर नवोन्मेष एक बृहत क्षेत्र के रूप में आज हमारे सामने है जिसका प्रयोग हम मानव जीवन में खुशहाली लाने के लिए कर सकते हैं. भारत के पास एक वैज्ञानिक सोच है, जरूरत सिर्फ उसे बुनियादी जरूरतों को पूरा करने और समुचित दिशा देने की है. रक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, शिक्षा आदि जैसे जीवन के विविध क्षेत्रों में नवोन्मेष की अपार संभावनाएं छिपी हुई हैं. आइए इस ओर एक कदम बढ़ाएं और भारत में समग्र विकास को नई ऊंचाई दें.

(अहिंदी भाषी गट के अंतर्गत पुरस्कृत)

गुटका या मौत

मैं मौत को गुहारता हूँ कर रहा पुकार।
बीडी खैनी खाई मैनें मृत्यु इंतजार।।
मेरे मुँह में दर्द आज कितनी पीड़ा है।
ऐसी गन्दी आदत ने मुँह मौत मोड़ा है।।

गुटका खाया बीड़ी पी कुछ देर की मस्ती।
आज मेरी दुनिया से ही मिट रही हस्ती।।
न चाहा मैनें फिर भी मौत सामने खड़ी।
पत्नी तो बेहाल है बेहोश ही पड़ी।।

गुटका खाकर मैने क्या कमाल कर दिया।
परिवार को जीते जी कंगाल कर दिया।।
अरे, अब तो बोलती भी बंद हो गई।
वक्त आया मौत का डोली भी सज गई।।

मेरे दो-दो लड़कियाँ न कोई बेटा है।
जीवन अपना चुक गया बेमौत लेटा है।।
बड़ी बेटी सोलह की छोटी को पढ़ाना।
घर अपना टूटा हुआ है उसको बनाना।।

आज मैं भी मौत से भयभीत हो रहा।
जाते-जाते विनती आज एक कर रहा।।
आपको ही आपका शीशा दिखा रहा।
आपका भविष्य क्या ये ही बता रहा।।

मेरे बच्चे सामने अनाथ हो रहे।
रो रहे हैं हम से ही सवाल कर रहे हैं।।
डाक्टर कहते यही हैं गुटके का असर।
जीभ गल चुकी है मेरी हो गया कैंसर।।

खाओ मत ये गुटका, मत बीड़ी को पीना।
बन जाता यही रस्ता मौत का जीना।।
नशा जीती मौत कभी इसको न खाना।
मौत का फन्दा ये मत इसको अपनाना।।

चन्द पल का ही मेहमान हूँ बस ये ही खबर है।
कुछ भी कर लूं आज मैं सब बेअसर ही है।।
हाँ मैं ही समझा मै था कितना स्वार्थी।
लत लगा जो गुटके की निकलती अर्थी।।

समझो मेरे भाई मेरे दोस्त और हमदम।
यह सब लतें बनी हैं मौत का कदम।।
सुन लो मेरी बात अपना जीवन बचा लो।
जीवन अमानत तेरे घर की इसको बचा लो।।

- विपुल सेन

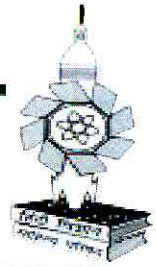

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2013 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

हमारा स्वास्थ्य और मसालों में व्याप्त प्राकृतिक रसायनों का विज्ञान

प्रोफेसर (डॉ) सुशीला राय
सीनियर फेकल्टी, इंडियन रिसर्च इन्सटीट्यूट फॉर इंटिग्रेटेड मेडीसिन, हावड़ा- 711 302,
पूर्व प्रोफेसर फार्मास्यूटिकल केमिस्ट्री एवं सीनियर साइंटिफिक ऑफिसर तथा
राजभाषा अधिकारी, रक्षा प्रयोगशाला, डी.आर.डी.ओ., जोधपुर -342005

औषधि विज्ञान के पितामह हिप्पोक्रेट्स का स्वास्थ्य और हमारे भोजन के प्रति कथन अत्यंत सार्थक है. इनके अनुसार कोई चिकित्सक रोग दूर नहीं करता परंतु प्रकृति और प्राकृतिक जीवन जीने की शैली ही रोग निवारक और जीवनदायिनी है. वह चिकित्सक मूर्ख है जो अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान (वैदिक विज्ञान) को न तो समझता है और न ही उसे मान्यता प्रदान करता है.

हिप्पोक्रेट्स कहते हैं कि प्राकृतिक भोजन ही औषधि है -

"Nature cures, not the physician.
Your food shall be your medicine.
Foolish the Doctor, who despises
the knowledge acquired by the ancients"

आधुनिक मानव का जीवन नित-प्रति अधिक से अधिक सुविधाभोगी, जीवनपद्धति और भौतिक सुखों की ओर अग्रसर होता जा रहा है. इस सुविधाभोगी, जीवनचर्या और भौतिकवादी आचार विचार के परिणामस्वरूप नये रोगों की उत्पत्ति और पुरानी बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है. एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत विभिन्न नवीन औषधियों से लेकर शल्य क्रिया के नये उपकरण व विशिष्ट विधियों, टीकों, अंग प्रत्यारोपण और अब स्टेम सेल के अनुसंधान और थैरेपी तक अभूतपूर्व आविष्कारों द्वारा विकास हुआ है. पर विडम्बना यह है कि दूसरी ओर कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप, स्मृतिह्रास, पारकिन्संस रोग, संधिपात, तनावजनित मानसिक रोगों के मरीजों, चिकित्सकों और अस्पतालों का भी उसी द्रुतगति के साथ विकास हुआ है. प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के अंतर्गत 11वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की तर्ज पर घोषित छह नये एम्स क्रमशः पटना, भोपाल, भुवनेश्वर, जोधपुर, रायपुर और ऋषिकोश का निर्माण लगभग पूर्ण हो गया है और जोधपुर में तो संचालित भी होने लगा है, फिर भी भारत जैसे देश में स्थिति गंभीर है क्योंकि देश में उपलब्ध चिकित्सा स्वास्थ्य सेवाओं का वर्तमान ढांचा और प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या हमारी जनसंख्या की आवश्यकताओं की अपेक्षा बहुत कम है. दूसरी ओर भारतीय परिवेश में प्राकृतिक रूप से विकसित हमारी परंपरागत देशी उपचार पद्धतियां हाशिये पर खड़ी नजर आ रही है. ये समस्त पारम्परिक पद्धतियां रोगों को ठीक से

समझकर समूल मिटाने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं.

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के आंकलन के अनुसार विश्व की 65 से 80 प्रतिशत जनसंख्या वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों पर ही निर्भर है, जो कि एलोपैथिक न होकर मूलतः परम्परागत चिकित्सकीय औषधियां ही हैं. इनमें से 250 से भी अधिक उपचार पद्धतियां मान्यता प्राप्त हैं और 180 थेरेपियां व तकनीकियां रोगों के उपचार और नियंत्रण के अंतर्गत सम्मिलित हैं. वैकल्पिक चिकित्सा (Alternative Medicine) या परंपरागत पद्धति (Traditional Medicine) पूरे विश्व में पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा Complimentary Alternative ane Unconventional Medicine ने CAM के नाम से आधुनिक आयुर्वैज्ञानिकों और वैदिक विज्ञान के अनुसंधानकर्मियों को आकर्षित कर रखा है.

योजना आयोग के वक्तव्य के अनुसार हमारी 12वीं पंचवर्षीय योजना स्वास्थ्य को समर्पित हैं. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की अनेक राज्यों में अभूतपूर्व सफलता पर माननीय प्रधानमंत्री जी के निर्देशानुसार राष्ट्रीय नगरीय स्वास्थ्य मिशन को भी प्रारंभ कर दिया गया है. कुछ पारंपारिक चिकित्सा पद्धतियों को भारत ने आयुष (AYUSH) के अंतर्गत मान्यता प्रदान की है. पिछले दशकों में आयुष, (AYUSH-Ayurved, Yoga and Naturopathy, Unani, Sidh and Homeopathy) के अंतर्गत आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी पद्धतियों के प्रचार-प्रसार और अनुसंधान पर भारत विशिष्ट ध्यान दे रहा है. प्रत्येक चिकित्सा पद्धति के लिए अनुसंधान परिषद का गठन किया गया है. उदाहरणतः योग और प्राकृतिक चिकित्सा के लिए केंद्रीय, योग और प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद (Central Council for Research in Yoga & Naturopathy-CCRYN) स्थापना के समय से भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, आयुष विभाग, नई दिल्ली के अंतर्गत कार्यरत है. इन परिषदों ने अनेक अनुसंधान परियोजनाओं और कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न रोगों के निवारण तथा प्रतिरोधक क्षमताओं के विकास में अभूतपूर्व सफलताएं अर्पित की हैं. यद्यपि एलोपैथी सबसे अधिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति मानी जाती है, परंतु कुछ रोगों के उपचार में प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से इस पद्धति की अपनी सीमाएं हैं. कोई भी एक पद्धति सभी रोगों के लिए समान रूप से कारगर व प्रभावकारी नहीं है. वहीं एक पद्धति विशिष्ट रोग के लिए रामबाण (Panacea) सिद्ध हो चुकी है. जैसे कि मोटापा (Obesity) के लिए प्राकृतिक चिकित्सा और चर्म रोगों में होम्योपैथी अधिक प्रभावकारी है. रोग-निवारण एवं स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से संपूर्ण विश्व में आज अनेक उपचार पद्धतियां एवं चिकित्सा की विविध परंपराएं मानव समाज के बीच प्रचलित हैं. भारत में दादी मां के नुस्खों और नीम, तुलसी, हल्दी, हींग, सोंठ, पीपल, आंवला, अजवाइन, मैथी, केसर, हरड़ आदि के प्रचलित उपयोग से हम सभी पूर्ण परिचित हैं. स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में आज एक्यूप्रेशर, एक्यूपंक्चर, सुजोक, गंध चिकित्सा, सम्मोहन चिकित्सा, रेकी चिकित्सा, चुंबकीय चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, होम थेरेपी, आर्गेनिक उत्पाद आदि अनेक उपयोगी विधियों एवं पद्धतियों को सम्मिलित कर लिया गया है.

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय भारत सरकार - नई दिल्ली की 2010 में प्रकाशित रिपोर्ट "Status and Role of AYUSH and Local Health Traditions" में भारतीय चिकित्सा पद्धति पर राष्ट्रीय नीति का निम्न उल्लेख महत्वपूर्ण है -

"India possesses unmatched heritage represented by its ancient systems of medicine which are a treasure house of knowledge for both preventive and curative healthcare. The positive features of the Indian Systems of Medicine, namely, their diversity and flexibility, accessibility, affordability, a broad acceptence by a section of the general public, comparatively low cost, a low level of the technoligical input and growing economic value have great potential to make them providers of health care that the larger sections of our people need".

- Government of India

(National Policy on Indian System of Medicine and Homeopathy, 2002)

आज इस बात की तात्कालिक आवश्यकता है कि देश में समग्र व्यक्तित्व विकास हेतु स्वास्थ्य संबंधी पश्चिमी मॉडल का अंधानुकरण न कर हम अपने देश की पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों को प्राथमिकता देकर स्वास्थ्य सेवा को सर्व सुलभ बनायें. इस संदर्भ में स्वास्थ्य के लिए मसालों में व्याप्त प्राकृतिक रसायनों का विज्ञान दैनिक खानपान में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है, ताकि जंक फूड के अति प्रचलित अंधाधुंध उपयोग के दुष्प्रभावों में विशेषकर हमारा युवा वर्ग सावचेत हो सके. पिछले सौ वर्षों में समग्र स्वास्थ्य विकास के अंतर्गत हमारी मानव जाति की भांति एक जटिल रासायनिक प्रक्रिया से गुजर रही है. इस प्रयोग के अंतर्गत हमारा शरीर, हमारा स्वास्थ्य, हमारा धन और भावनाओं के साथ यह भ्रम पैदा किया जा रहा है कि आधुनिक विज्ञान हमारे भोजन, टानिकों और दवाओं में अप्राकृतिक विधियों द्वारा लाये परिवर्तनों से बेहतर स्वास्थ्य और सुखी जीवन प्रदान कर सकेगा. रेंन्डलफिट्जेराल्ड द्वारा लिखित प्लूमग्रूप की अमेरिका में 2007 में प्रकाशित पुस्तक **'100 वर्षों का**

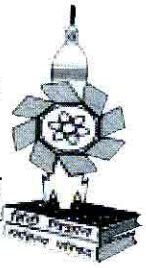

झूठ (The Hundred Year Lie) में यह तथ्य उजागर किया गया है कि अप्राकृतिक रसायनों से युक्त दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले विभिन्न उत्पाद किस प्रकार हमारे शरीर को प्रदूषित कर रहे हैं जिससे गहन रोगों की वृद्धि में कैमिकल युक्त उत्पादों की भूमिका असंदिग्ध रूप से सिद्ध हुई है.

आज विश्व में विकलांगता व मृत्यु दर में भी वृद्धि हो रही है. बढ़ती आयु से जुड़े इन गहन रोगों के मुख्य कारणों में शारीरिक श्रम का अभाव, कुपोषण, असंतुलित भोजन, तंबाकू का प्रयोग, अत्यधिक ड्रग्स और रसायनों युक्त खाद्य पदार्थों, अधिक मात्रा में मदिरा आदि का सेवन प्रमुख है. गहन रोगों के उपचार के लिए आधुनिक विज्ञान ने यद्यपि अनेक औषधियों का आविष्कार किया है जो कि अधिकतर निष्प्रभावी, बहुत अधिक खर्चीली और अनेक गंभीर दुष्प्रभावों से संक्रमित होने के साथ मृत्युकारक सिद्ध हो रही है. गहन रोगों को पिछले 50 वर्षों के अंतर्गत किये गये अनुसंधानों से यह निष्कर्ष निकला है कि कैंसर के साथ इन गहन रोगों का कारण 500 तक विभिन्न जीनों के अनियंत्रित उत्पाद हैं.

मसालों में व्याप्त प्राकृतिक रसायनों (न्यूट्रास्यूटिकल्स) में इन अनियंत्रित उत्पादों को निष्क्रिय करने की क्षमता होती है. नवीन अनुसंधानों द्वारा विभिन्न गहन रोगों की रोकथाम और चिकित्सा में ये अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं. विश्व के पूर्वी देशों में हजारों वर्षों से विभिन्न प्रकार के उपचारों में मसाले भोजन के अभिन्न अंग के रूप में बहुतायत से प्रयोग मे लाये जाते हैं. लगभग 5 शताब्दी पूर्व मसालों की स्वर्णिम यात्रा पश्चिम की ओर से शुरू हुई थी. मसालों में व्याप्त प्राकृतिक रसायनों पर विधिवत अध्ययन किया गया है. इनके अंतर्गत प्राप्त किये गये प्रमुख रसायन निम्न हैं :-

1. एसीटॉक्सीचेभीकॉल एसीटेट (1-acetoxychavicol acetate), एनीथॉल (anethole), केप्सेसिन (capsaicin), कार्डमोनिन (cardamonin), रिर्सपीन सर्पेनटीन (reserpine serpentine), करक्यूमीन (curcumin), कैप्सलीन (cappsaline), कैप्परेलीन (cappariline), यूजीनॉल (eugenol), डाईबैन्जोएलमीथेन (dibenzoylmethane), डाइसोजनीन (di-osgenin), गैम्बोजिक एसिड (gambogic acid), जिन्जेरॉल (gingerol), थॉयमोक्यूनोन (thymoquinone), यूर्सोलिक एसिड (ursolic acid), जैन्थोह्यूमाल (xanthohumol) और जैर्‌यूम्बोन (jerumbone) आदि हैं. उक्त सभी रसायन गेलेन्जल (galangal), एनीसी (anise), लाल मिर्च (red chili), बड़ी इलायची (black cardamom), हल्दी (turmeric), लिकोरिस (licorice), मैथी (fenugreek), लौंग (clove), कोकम (kokum), अदरक (ginger), काला जीरा (black cumin), रोजमेरी (rose-mary), कैपरिस (capparis decidua), रॉउलफियासर्पेटिना (raulphia serpentina), हाप (hop) और पाइनकोन जिंजर (pinecone ginger) आदि से प्राप्त किये गये हैं.

प्राकृतिक रसायनों की प्रमुख विशेषताएं संक्षेप में निम्न वर्णित हैं :-

1. उचित अनुपात और मात्रा में उपयोग में लाये गये मसालों द्वारा प्रदान किये गये प्राकृतिक सुस्वादु भारतीय व्यंजनों ने यूरोपीय लोगों को मुख्यतया आकर्षित किया था. मसालों में सुगंध और औषधीय गुणों के साथ तीखापन और थोड़ा कड़वापन भी होता है.

2. प्राचीन समय से मसाले सूजन, और उदर विकारों के उपचार में काम में लिये जाते हैं.

3. पाचन संस्थान के रोगों के उपचार के अतिरिक्त पाचन अंगों में एन्जाइम्स के तीव्र उत्सर्जन द्वारा पाचन शक्ति को बढ़ाने और दृढ़ता प्रदान करने में मसालों की अहम भूमिका उल्लेखित है.

4. पाचन संस्थान के अंतर्गत आमाशय के रोगों और आंतों के विकारों के उपचार और पाचन तंत्रीय स्रावों के निःसरण में मसाले अत्यंत कारगर सिद्ध हुए हैं.

5. आयुर्वेदीय दवाओं के विभिन्न उत्पादों में मसालों का काढ़ा जुकाम, श्वास रोग, इन्फ्लूएंजा, बुखार, अपच, उदरविकार और दर्दयुक्त मासिक धर्म में प्रयोग किए जाते हैं.

6. मसाले मुख्यतः अपने प्राकृतिक गुणों के कारण पारम्परिक औषधि के अंतर्गत कृमिनाशक के रूप में भी वर्णित हैं.

विश्व में मुख्यतया 35 प्रकार के मसालों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें प्रकृति में उपलब्धि अनुसार 6 भागों में बांटा गया है.

1. कंद और जड़ों से प्राप्त मसाले : जैसे हल्दी, प्याज, लहसुन, अदरक आदि.

2. तना, छाल एवं लेटेक्स से प्राप्त मसाले : जैसे दालचीनी, हींग आदि.

3. पत्तियों से प्राप्त मसाले : जैसे तेज पत्ता, करी पत्ता, पोदीना आदि.

4. फूलों से प्राप्त मसाले : जैसे चक्रफूल, अजवाइन फूल व पोदीना फूल आदि.

5. फलों के रूप में प्राप्त मसाले : जैसे लौंग, जायफल, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, काली मिर्च, लाल मिर्च आदि.

6. बीजों से प्राप्त मसाले : जैसे अजवाइन, जीरा, राई, सौंफ, कलौंजी आदि.

राष्ट्रीय पोषण संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन), हैदराबाद से प्रकाशित प्रकाशनों में मसालों में

उपस्थित रसायनों की मात्रा, कैलोरीफिक एवं न्यूट्रीशनल वैल्यू, उनके स्वास्थ्यवर्धक और रोग निवारक गुणों का विस्तृत विवरण मिलता है. भारतीय व्यंजनों में मसाले भोजन बनाने के उपरांत अंतिम क्षण में मिलाये जाते हैं, ताकि उनमें व्याप्त सुगंध और स्वाद बना रहे. लंबे समय तक पकाने पर उनमें एरोमा के रूप में उपस्थित इसेंसशियल ऑइल अधिकतर वाष्पित हो जाते हैं. रासायनिक क्रियाओं द्वारा उनका विखंडन और संयोजन मौलिक संरचना में परिवर्तन कर व्याप्त प्राकृतिक रसायनों के गुणों को आंशिक या पूर्णरूप से नष्ट कर देते हैं. मसालों से निर्मित सब्जियों का शोरबा (रसा/सालन/करी) सबसे अधिक पसंद किया जाता है. इस करी के मुख्य अवयवों में अदरक, हल्दी, प्याज, लहसुन, दालचीनी, अजवाइन, जीरा, मैथी, धनिया, हींग, जायफल, तेजपत्ता, करी पत्ता, काली मिर्च, खसखस, लौंग, लालमिर्च, सौंफ, कलौंजी, चक्रफूल आदि सम्मिलित हैं. मसाले मांस, मछली, सब्जियों और विभिन्न प्रकार के सूप को विशिष्ट स्वाद और सुगंध प्रदान करते हैं. मसाले आकर्षक रंग, पौष्टिकता, स्वाद व सुगंध प्रदान करने के अतिरिक्त सब्जियों के अधिक कड़वापन व कसैलापन को संतुलित कर लवण और कुछ विटामिन्स की कमी की भी पूर्ति करते हैं.

मसालों का भोजन और औषधि के रूप में उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है. परंतु औषधीय महत्व के विषय में पूर्ण जानकारी अभी भी शेष है. अनेक एलौपेथिक, आयुर्वेदिक, होम्योपैथी, सिद्ध और यूनानी औषधि उत्पादों में इनका उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है जैसे की कैंसर, ज्वर, मलेरिया, आमाशय संबंधी उत्पाद, उल्टी और अन्य रोगों के अतिरिक्त शक्तिवर्धक टॉनिकों आदि. परंतु इनके उपयोग में अत्यंत सावधानी की आवश्यकता हैं. मसालों का अधिक मात्रा में उपयोग मानव शरीर के लिए अत्यंत घातक दुष्प्रभावों के अंतर्गत दर्द से लेकर उल्टियां, उन्माद, उदर के अल्सर, आमाशय का कैंसर, पेट में जलन, पेशाब में जलन आदि सम्मिलित हैं. महत्वपूर्ण मसालों, उनमें व्याप्त प्राकृतिक रसायन और औषधीय तथा अन्य उपयोग सारणी 1. में संकलित किये गये हैं.

वनस्पतियों से प्राप्त मसालों को व्याप्त प्राकृतिक रसायनों के आधार पर दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है. प्रथम वर्ग में करक्यूमिन (Curcumin) समूह के कृषि उत्पाद आते हैं तो वहीं दूसरे वर्ग में थायोसायनेट्स (Thiocynates) समूह के उत्पाद आते हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है.

पिछले दशक में विभिन्न रोगों के उपचार के अंतर्गत किये गये अनुसंधानों में हल्दी, केसर, दालचीनी, इलायची, अदरक जायफल आदि में उपस्थित करक्यूमीन (चित्र-1) की अभूतपूर्व भूमिका के संदर्भ में अनेक शोध प्रकाशनों की बाढ़ सी आ गई है. करक्यूमीन की भूमिका गहन रोगों जैसे कीमोसेंसी टाइजर (Chemosensitizer) और रेडियो सेंसीटाइजर (Radiosensitizer) गांठों के उपचार के लिए और सामान्य अंगों के लिए कीमोप्रोटेक्टर (Chemoprotractor) और रेडियोप्रोटेक्टर (Radioprotractor) के रूप में पाई गई है. करक्यूमीन की मसाले के स्वर्णिमघटक के रूप में खोज और इसकी चमत्कारिक जैविक क्रियाओं के कारण इसे

चित्र - 1 करक्यूमीन

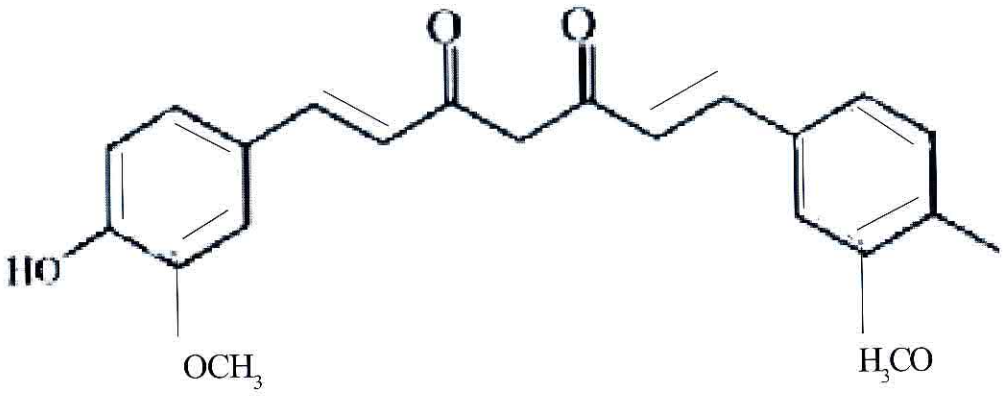

विशेषकर कैंसर रोगों के उपचार में और आंतरिक अंगों की सूजन नियंत्रण में विशिष्ट स्थान प्राप्त है. मनुष्यों में प्राप्त **CAMP (Cathelicidin Antimicrobial peptide) Gene** ही ऐसा सूक्ष्मजीवी नाशक पेप्टाइड है, जिसमें बहुतायत से सूक्ष्मजीवियों, क्षयरोग कारकों आदि को नष्ट करने की

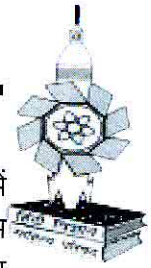

क्षमता होती है. मसालों में व्याप्त करक्यूमीन में केम्प जीन स्तर को बढ़ाने की अद्‌भुत क्षमता ओमेगा-3 फैटी अम्लों की तुलना में तीन गुणा अधिक तक होती है. करक्यूमीन की इस अद्‌भुत क्षमता के कारण प्रकृति ने इस दिव्य यौगिक को कैपरीडेसी (Cappredіaceae), सोलोनैसी (Solonaceae), जिंगीबरेऐसी (Zingiberaceae), एपिऐसी (Apiaceae), रूटेसी (Rutaceae), लेमीऐसी (Lamiaceae), मिरटेसी (Myrtaceae) आदि फैमिली के अंतर्गत 150 से अधिक पौधों में उपलब्ध कराया है. इन सभी मसालों के पौधों और अन्य औषधीय पौधों में करक्यूमीन की विभिन्न मात्रा रोगों के उपचार में विशिष्ट पहचान प्रदान करती है. इन 150 विशिष्ट औषधीय गुणों से युक्त मसालों, खाद्योपयोगी और मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी पौधों के अंतर्गत प्रमुख चर्चित पौधे - जैसे नीम, शमी (खेजड़ी), पीलू, कीकर (बबूल), केर (डेले), बेर, हरसिंगार (पारिजात), गुड़मार, सहजन (ड्रमस्टिक) आदि सम्मिलित हैं.

पोषण अनुसंधान से जुड़े अनेक वार्षिक रिव्यू जर्नल्स में प्रकाशित शोध पत्रों में हल्दी को एंटीआक्सीडेन्ट, एंटीइन्फ्लेमेटरी और कोलेस्ट्राल को कम करने के अतिरिक्त एंटीट्यूमर गुणों से युक्त पाया गया है. हल्दी में व्याप्त करक्यूमीन की प्रचुर मात्रा ही इसका प्रमुख औषधि गुण है, जो रोगों के कारण उत्पन्न प्रारंभिक सूजन आदि प्रमुख लक्षणों को सर्वोत्तम टी एन एफ ब्लाकर (NF-kβ blocker/precusor) होने के कारण प्रारंभ में ही रोक देती है. अतः हल्दी की 1.50 ग्राम तक की न्यून मात्रा दो माह तक लेने पर कैंसर, मधुमेह, मोटापा, तनाव, सोरायसिस, सूजन, पेचिश, हृदय रोग आदि बीमारियों में उत्पन्न सूजन से प्रारंभिक अवस्था में रोगों से मुक्ति दिलाती है. अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (National Institute of Health) द्वारा स्वीकृत परियोजनाओं के अंतर्गत किये अनुसंधानों से यह निष्कर्ष भी निकला है कि हल्दी की अधिक मात्रा में सेवन से अनेक जटिल समस्याओं को जन्म देकर रोग का कारण भी बनी है. इसके प्रयोग से त्वचा में जलन, आमाशय के अल्सर, पित्ताशय की पथरी आदि विभिन्न रोगों की संभावना बढ़ जाती है.

करक्यूमिन समूह के मसालों के उपरान्त दूसरे वर्ग में नाइट्रोजन और सल्फर युक्त समूह के मसाले, खाद्योपयोगी पौधे और मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी अन्य कृषि उत्पाद सम्मिलित हैं. नाइट्रोजन और सल्फर युक्त इन प्राकृतिक न्यूट्रास्यूटिकल्स में थायोसायनेट ग्रुप उपस्थित होता है. थायोसायनेट स्वतंत्र रूप से प्रकृति में उपलब्ध न होकर थायोग्लूकोसिनोलेट्स (चित्र-2) के रूप में पाया जाता है और इसमें मुख्यतः एग्लायकोन (aglycone) फॉर्मोकोलॉजिकली एक्टिव होता है.

चित्र-2 ग्लूकोसिनोलेट्स / थायोसायनेट ग्रुप

$$R - C = N - OSO_3$$

$$R - C = OSO_3$$

S-Glucose

Glucosinolates

$$S = C = N^-$$

Thiocyanate Group

ग्लूकोसिनालेट्स उपरोक्त कृषि उत्पादों में विभिन्न विशिष्ट यौगिकों के रूप में फॉर्माकोलिकली सक्रियता के लिए उत्तरदायी रसायन के रूप में चिन्हित किये जाते हैं. अनेक खाद्योपयोगी जातियों (Species) सहित 16 कुल (Families) के द्विदलीय एन्जियोस्पर्म पौधों में 120 से अधिक विभिन्न प्रकार के ग्लूकोसिनोलेट्स पाये गये हैं. प्रकृति में बहुतायत से पाये जाने वाले इन मसालों और औषधीय वृक्षों के अंतर्गत प्रमुख उदाहरण हैं - सरसों, राई, शकरकंद, सेमफली, सोयाबीन, मूली, प्याज, पत्ता, गोभी, फूलगोभी, शलजम, सिंघाड़े, बेर, करेला, केर (करील या डेले), नीम, सहजन, पीलू, बबूल, हरसिंगार, गुड़मार आदि. प्रमुख रूप से ये उपलब्ध ग्लूकोसिनोलेट्स प्रकृति में ग्लायकोसाइड्स के रूप में पाये जाते हैं.

केर (capparis decidua) नामक वृक्ष रेगिस्तान का एक प्रमुख बहुउपयोगी पौधा है. औषधियों एवं सब्जी और अचार

के रूप में इसके कच्चे फलों का प्रयोग बड़े चाव से किया जाता है. मैंने अपने शोध प्रबंध (पी.एच.डी.) में इस पौधे के फूल और कलियों में व्याप्त नाइट्रोजन एवं सल्फर युक्त ग्लूकोकैपरीन, ग्लूकोकैप्सलीन सहित कुल 15 प्राकृतिक रसायन निकाले हैं, जिसमें मुख्य 2 हाईड्रोकार्बन्स, 2 नये संस्तृप्त एलीफैटिक कीटोन्स, एक फैटी अम्ल, 5 ग्लायकोसाइड्स सहित 2 मुक्त शर्कराएं भी सम्मिलित हैं.

समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन के लिये मसाले केवल भोजन को अधिक सुस्वादु बनाने के अतिरिक्त प्राकृतिक रासायनों के कारण फाइटोन्यूट्रिएंस, इसेंसशियल आयल, एंटी आक्सीडेन्ट्स, लवण और विटामिन्स से युक्त होते हैं. भारतीय मसालों का औषधीय उपयोग के अतिरिक्त वजन कम करने, स्मरण शक्ति बढ़ाने और अन्य दूसरे स्वास्थ्य वर्धक गुणों के लिए भी किया जाता है. जिनका विवरण सारणी 2 एवं 3 में दर्शाया गया है.

मसालों का नाम	उपस्थित रसायनों के नाम	विभिन्न उपयोग
हल्दी (Turmeric)	वाष्पीय तेल में मुख्यतया टरमीरोन (turmerone), एटलेनटोन (atlantone), जिंगीबेरीन (Zingi berene), मोनो एरं सैसक्यूटरपीन्स (mono and sesquiterenes) के अलावा मुख्य करक्यूमिनोयड्स (curcuminoids), होते हैं जिसमें करक्यूमिन (curcumin) या डाई फैरूलॉयल मीथेन (diferuloyl ethane) डीमीथॉक्सी करक्यूमिन (demethoxy curcumin), बाई-डी मीथॉक्सी करक्यूनि (bi-D-methoxy-curcumin), सिनियोल (cineole), प्रोटीन, विटामिन 'ए', मैग्नीशियम, मैग्नीज, आयरन, नियॉसिन, पोटेशियम, सिलीकॉन, सिलेनियम तथा सोडियम आदि होते हैं.	जड़ से प्राप्त मसाला करी का प्रमुख अवयव है. यह खाने को सुनहरा रंग प्रदान कर आकर्षित एवं रूचिकर बनाती है. वैवाहिक और अनेक मांगलिक कार्यों में इसका प्रयोग किया जाता है. एंटी ऑक्सीडेंट, एंटीसेप्टिक, एंटीकैंसर आदि औषधीय गुणों से भरपूर इसकी सीमित मात्रा (1 से 2 ग्राम) तक सेवन निम्न रोगों के उपचार में प्रमाणित पाई गई है. यह पाचन शक्ति सुधारक, पेट का अल्सर, दमा, अस्थमा, कैंसर, उच्च रक्तचाप एवं कोलेस्ट्राल वृद्धि, हृदय रोग, मधुमेह, एचआईवी, चर्म रोग तथा दूसरे अन्य संक्रमण पर नियंत्रण करती है. गठिया वात एवं संधि-वात आदि रोगों में उत्पन्न सूजन एवं दर्द को दूर करती है. परंतु अधिक मात्रा में खाने से त्वचा में जलन, उल्टी, चक्कर एवं सिरदर्द आदि परेशानी हो सकती है.
प्याज (Onion)	मुख्यतया आर्गेनो सल्फर रसायन जैसे डाइएलिल सल्फाइड्स (diallylsulfid), थायोसल्फी नेट्स (thiopsulfinates), फलेवोनॉयइड्स (flavoinoids) जैसे क्यूअर सिटीन (querceteen) और कैम्पफेराल (kaempferol) आदि होते हैं.	जड़ से प्राप्त मसाला करी का प्रमुख अवयव है. एंटी बायोटिक, एंटी सेप्टिक, एंटी माइकोब्रियल और कार्मीनेटिब औषधिय गुणों के कारण संक्रमण से बचाता है. इसमें सल्फर, फाइबर्स, विटामिन्स 'बी', 'सी' और कम मात्रा में सोडियम भी पाया जाता है. फलस्वरूप वसा, कोलेस्ट्राल आदि संतुलित रहते हैं.
अदरक (Ginger)	प्रमुख यौगिक ओलियोरेजीन (oleoresin) के अंतर्गत जिंजीराल (gingerol), सोगाओल (shogaol) और जिंजीरोन (gigerone) तथा फिनाइल प्रोपेनोइड्स (phenyle propanoides) के यौगिक आदि की एक तीखी गंध लिए होता है. साथ ही वसा, प्रोटीन, स्टार्च, विटामिन्स 'ए', 'बी' एवं 'सी', मिनरल्स और अन्य अमीनो अम्ल होते हैं.	जड़ से प्राप्त मसाला करी का महत्वपूर्ण भाग है. खाने को रूचिकर एवं पाचक बनाता है. औषधि के रूप में पाचन संस्थान से जुड़ी समस्याएं, वात, पित्त एवं कफ जनित अस्थमा, सर्दी, जुकाम, खांसी गले के दर्द आदि के संक्रमण में तथा कोलेस्ट्राल, कैंसर और तनाव आदि शहद के साथ मिला कर खाने से नियंत्रित होता है.

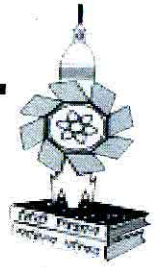

दालचीनी (Dalchini)	तेल में मुख्यतया α एवं β पाइनीन्स (pinenes), सेबीनीन्स (sabinenes), मिरसीन (mircene), लिमोनीन (limonene) लिनालूल (linalool), अल्फा टरपिनाल एसिटेट (alpha terpineol acetate) जिरेनियॉल (geraniol) मिथाइलयूजिनाल (methyleugenol), अल्फाफिलैन्ड्रीन (alphaphellandrene), सिनियोल (1.8 cineole), और ट्रांसनेरोलीडॉल (transnerolidol) आदि रसायन होते हैं.	तने से प्राप्त छाल गर्म मसाले का एक प्रमुख अवयव है, जिसे भोजन को सुस्वादिष्ट बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है. औषधीय गुणों से भरपूर यह पाचन संस्थान से जुड़ी सभी समस्याएं, वात, पित्त एवं कफ जनित अस्थमा, सर्दी, जुकाम, खांसी, गले के दर्द आदि संक्रमण में शहद के साथ मिला कर खाने या काढ़ा बनाकर पीने से लाभ मिलता है. यह इनस्यूलीन बनाने में सहायक, मधुमेह, रक्तचाप, कोलेस्ट्राल एवं कैंसर नियंत्रक, होती है.
हींग (Asafoetide)	वाष्पीय तेल (10 से 17 प्रतिशत) में रेजिन (40-60 प्रतिशत) और गोंद (25 प्रतिशत), एसारेसीनॉल फैरूलेट ए एवं बी (asaresinol ferulate-A&B) , फैरूलिक अम्ल (ferulic acid) और अम्बैलीफैरोन (aumbeliferon) आदि होते हैं.	तने से प्राप्त (दूध) मसाला एक विशेष गंध लिए छोंक के रूप में भोजन का सुस्वादिष्ट बनाने एवं बादी दूर करने के लिए सभी पाचक चूर्णों में प्रयोग की जाती है. पाचक, वात, पित्त एवं कफ निवारक गुणों के कारण इसका आयुर्वेद औषधि निर्माण में अत्यधिक प्रयोग किया जाता है. कुकर खांसी, दमा, अस्थमा एवं अन्य संक्रमित रोगों से बचाव करती है.
करी पत्ता (Curryleaves)	मुख्यतया वाष्पीय तेल में मोनोटरपीन्स हाईड्रोकार्बन्स एवं मोनोटरपीन्स जनित अल्कोहल प्रोटीन, विटामिन्स, फाईबर, कैल्शियम, पोटेशियम आदि होते हैं.	पत्तों से प्राप्त मसाला जिसे मीठा नीम भी कहते हैं, छौंक भोजन को सुस्वादिष्ट एवं खुशबू युक्त बनाने में प्रयोग किया जाता है. औषधि के रूप में मधुमेह नाशक, बर्र एवं मधुमक्खी के दंश जहर को दूर करने में पूरा पौधा जड़ी बूटी के रूप में प्रयोग किया जाता है.
पुदीना (Mint)	वाष्पीय तेल मुख्यतः मेंथाल, मॅथोन और मेंथाल एसीटेट्युक्त होता है.	पत्तियों को चटनी के रूप में खाने से लौह तत्व की पूर्ति होती है. औषधि प्रयोग के अंतर्गत खून शुद्धिकरण, पाचन संबंधित समस्याएं, ठंड के कारण बुखार, कफ, खांसी, जुकाम एवं गला आदि के संक्रमण को दूर करने में लाभकारी होता है.
तुलसी (Basil)	वाष्पीय तेल में सिसऑसीमीन (cisocimene), मिरसीन, जिरेनियाल, यूजिनाल, लिनालूल, मिथाइल सिनामेट्स, कैम्फर, लिमानोनीन, मिथाइल चैवीकॉल (methyl chavicol), बीटा पाइनीन एवं गामा टरपीनियाल आदि होते हैं.	पत्तियों से प्राप्त प्राकृतिक दिव्य औषधीय गुणों से युक्त जीवन शक्ति प्रदान करने वाली आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माण में प्रयोग की जाती है. शहद, अदरक एवं तुलसी की पत्ती के साथ बनी चाय या काढ़ा दमा, इन्फलूएंजा सर्दी, जुकाम एवं सिर दर्द, पाचन एवं पेट संबंधित समस्याओं, किडनी स्टोन, हृदय रोग आदि अन्य रोगों में अत्यंत लाभदायक है. मच्छर, मक्खियों व अन्य कीटों को दूर कर वातावरण को शुद्ध करती है.

अजवाइन (Thyme)	वाष्पीय तेल (90.3 प्रतिशत) में प्रमुखता (20 से 54 प्रतिशत) तक थायमाल, मिरसीन, पैरा सायमीन (p-cymene), लिनालूल बोरनियाल, गामा टरपीन्स, बीटा पाइनीन्स एवं टरपीन्स आदि होते हैं.	बीज से प्राप्त गर्म मसाले एवं छौंक का एक अवयव है, जिसे भोजन को सुस्वादिष्ट एवं पाचक बनाने में प्रयोग किया जाता है. अजवाइन का लहसुन एवं सरसों के तेल के साथ धीमी आंच पर बनाया हुआ तेल के साथ धीमी आंच पर बनाया हुआ तेल की मालिश सूजन एवं दर्द निवारक होता है. औषधि के रूप में कृमि नाशक, एंटीफंगल, पेट संबंधित रोग, मधुमेह नाशक, एवं श्वास व कफ आदि संक्रमित रोग निवारक गुणों से युक्त होती है.
राई (Mustard)	प्रमुख यौगिक 92 प्रतिशत तक एलाइल (allyl) आइसो थायोसायनेट्स (iso thiocyanates) होते है.	बीजों से प्राप्त मसाला छौंक के रूप में भोजन को सुस्वादिष्ट एवं पाचक बनाता है. पत्तियों की सब्जी (सरसो का सागं) मक्के की रोटी के साथ पंजाब का प्रिय भोजन है. इसका तेल खाने, बालों और शरीर की मालिश के लिए प्रयोग में लाया जाता है. जिंक, आयरन, प्रोटीन मैग्नीज, कैल्शियम व गंधक का अच्छा स्रोत है.
चक्र फूल (Star Anise)	वाष्पीय तेल में (75 से 90 प्रतिशत) एनीथॉल के अलावा इस्ट्रेगाल, पैराएनीसल्डीहाइड, एनीसी अल्कोहल, एसीटोफीनोन, पाइनीन्स, पिरीडॉक्सीन, लिमोनीन्स, थायमीन, विटामिन बी-6, कैल्शियम, आयरन, कॉपर, मैंग्नीज, जिंक आदि होते हैं.	फूल से प्राप्त गर्म मसाले का एक अवयव सुगंधित मिठाई, खीर, आदि बनाने में प्रयोग किया जाता है. औषधि के रूप में एंटी आक्सीडेंट कृमि नाशक, हृदय तथा कैंसर रोग निरोधक, श्वास, कफ एवं अन्य संक्रमित रोग निवारक, बी-6 की उपस्थिति मस्तिष्क के लिए अच्छा टॉनिक एवं शक्ति वर्धक गुणों से युक्त हैं.
केसर (Saffron)	कैम्पफीरालसिस/ट्रासकोसिन्स (caempherolcis/ transcrocins) पिक्रो-क्रोसीन, ट्राइमिथाइल हाइड्राक्सी कार्बो ऑक्जेल्डीहाइड साइक्लोहैक्जेन और सेफ्रेनॉल आदि होते हैं.	फूल से प्राप्त सबसे महंगा शक्तिवर्धक मसाला है. मीठे व्यंजनों एवं सौंदर्य प्रसाधनों में खुशबू व रंग प्रदान करती है. गर्म प्रकृति होने के साथ ही एंटी आक्सीडेंट, कार्मीनेटिव एंटीबैक्टीरियल, कार्सीनोजनिक, स्मरण शक्ति वर्धक आदि औषधीय गुणों के कारण यह लिवर एवं पाचन संस्थान को ठीक रखती है. लकवा व हृदय रोग, उपचारक तथा कैंसर निरोधक है. उच्च रक्तचाप, चर्म रोग, खांसी, दमा जुकाम, एलर्जी आदि संक्रमण एवं वजन कम करने में प्रयोग
लौंग (Clove)	मुख्यतया वाष्पीय तेल में फिनाइल प्रोपेनॉइडस (phenylpropanoids), जैसे कार्वाक्राल, यूजेनाल, सिनेमेलडीहाइड, थायमाल आदि रसायन होते हैं.	की जाती है. फूल एवं कली से प्राप्त गर्म मसाले एवं करी का प्रमुख अवयव है. औषधि के रूप में मसूढ़ों, एवं दांत दर्द, उल्टी, हिचकी, पाचन तंत्र, श्वास, जुकाम एवं कफ संबंधित समस्याओं के निराकरण में प्रयोग की जाती है.

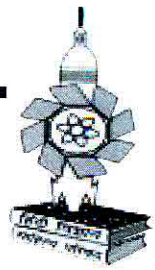

जायफल (Nutmeg)	वाष्पीय तेल (5 से 15 प्रतिशत) में असंतृप्त एवं संतृप्त वसा (20 से 40 प्रतिशत) मिलती है, जिसे जायफल का मक्खन भी कहते हैं. इसमें सेबीनीन्स, कैम्पफीन्स, यूजेनाल, डी पाइनीन्स बोरनियाल, लिनालूल, माइरिस्टीन, टरपीन्स एवं सैसक्यू टरपीन्स आदि होते हैं.	फूल से प्राप्त मसाला पाउडर करी को सुगंधित एवं सुपाच्य बनाता है. औषधि के रूप में दर्द नाशक, दमा, हृदय रोग, मुख दुर्गन्धनाशक, पाचन संस्थान संबंधित रोग एवं शिशु के उदर रोगों के उपचार में लाया जाता है. साबुन, तेल एवं शैम्पू आदि बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है.
इलायची (Cardamom)	वाष्पीय तेल में मुख्यतया अल्फा एवं बीटा पाइनीन्स, सेबीनीन्स मिरसीन, लिमोनीन, लिनालूल, α टरपिनाल एसीसेट, जिरेनियॉल, मिथाइल यूजिनाल आदि अनेक रसायन होते हैं.	फलों से प्राप्त गर्म मसाला, करी, मिष्ठान, चाय, दूध एवं अन्य पेय शर्बतों को सुगंधित बनाने का प्रमुख अवयव है. औषधि के रूप में मुख दुर्गन्धनाशक, पाचन तंत्र शोधक, वमनरोधक, पित्ताशय एवं किडनी में स्टोन बनने की प्रक्रिया को रोकती है.
काली मिर्च (pepper)	वाष्पीय तेल (4.6 से 9.7 प्रतिशत) में मुख्यतया पाइपरीन और दूसरे टरपीन्स जैसे पाइनीन्स, लिमोनीन हाईड्रोकार्बन्स, सेबिनीन्स, लिनालूल और कैरियोफाइलीन आदि रसायन होते है.	फल से प्राप्त गर्म मसाले का प्रमुख अवयव है. इसका पाउडर करी, फलों, दही, छाछ को सुगंधित, स्वाद में चरपरा एवं पाचक बनाने में प्रयोग की जाती है. औषधि गुणों के अंतर्गत खून शुद्धिकरण, पाचन संबंधित समस्याएं जैसे अपच, अफारा, दस्त, उल्टी, हैजा आदि एवं कफजनित गला, खांसी जुकाम एलर्जी आदि के संक्रमण दूर करती है.
लाल मिर्च (Red chilli or cayenne paper)	कैपेसायसिन्स (capasaicins), कैपेसायसिनोइड्स (capasaicinoids), नारहायड्रोपेसिन कैपेसायासिन्स (norhydrocapsaicins), होमोकैपेसायसिन्स (homocapsaicins), प्रोटीन, विटामिन 'सी' एवं 'बी', एस्कार्बिक एसिड, जिंक फासफोरस, आयरन, मैगनीशियम आदि होते हैं.	गर्म मसाला का प्रमुख अवयव है. यह साबुत एवं पाउडर रूप में भोजन को तीखा एवं स्वादिष्ट बनाने में प्रयोग की जाती है. औषधि प्रयोग के अंतर्गत एंटी एलर्जिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीफंगल, सिरदर्द, मोटापा, खून में थक्का बनने से रोकना, मधुमेह, कैंसर, कोलेस्ट्राल आदि रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है.
जीरा (Cumin)	वाष्पीय तेल (2 से 5 प्रतिशत) में मुख्यतः मैंथाडाइन क्युमिनएल्डीहाइड के यौगिकों के साथ 14 मुक्त अमीनो अम्ल, प्रोटीन, आयरन, कॉपर, पोटेशियम, जिंक, बी काम्पलेक्स (थायमीन, नियासीन, बी-6) एवं अन्य विटामिन्स 'सी' एवं 'ई' आदि रसायन होते है.	बीजों से प्राप्त मसाले का प्रमुख छौंक है. यह भोजन को स्वादिष्ट एवं खुशबू प्रदान करता है. पाचन संबंधित रोगों को दूर करता है. आयरन, कॉपर, पोटेशियम, जिंक, बी काम्पलेक्स आदि रसायन उपस्थित होने के कारण इसके औषधीय गुण बढ़ जाते हैं.

लौंग (Clove)	वाष्पीय तेल (72 से 90 प्रतिशत) में मुख्यतया यूजिनाल, एसिटाइल यूजिनाल, वैनीलीन, फिनाइल बीटा कैरियोफालीन के अतिरिक्त प्रोपेनाइडस, फलेवोनाइड्स एवं ट्राइटरपीनॉइड्स आदि होते हैं.	फूल से प्राप्त गर्म मसाले एवं करी का प्रमुख अवयव है. औषधि प्रयोग के अंतर्गत गर्म तासीर होने के कारण पाचन संबंधित समस्याएं, ठंड के कारण बुखार, कफ, खांसी, जुकाम एवं गले के संक्रमण, दांत दर्द एवं मधुमेह नियंत्रक के रूप में भी प्रयोग होता है.
धनिया (Coriander)	धनिया के बीज के वाष्पीय तेल (5 से 75 प्रतिशत) में मुख्यतः डी लिनालूल, कोरिएनड्राल, डेसिलएल्डीहाइड, बोरनियाल, जिरेनियाल, कैम्पफर मोनोटरपीन्स हाईड्रोकार्बन्स एवं कैम्पफीन्स आदि होते हैं.	बीजों से प्राप्त गर्म मसाले एवं करी का प्रमुख अवयव है. ताजी हरी पत्ती एवं बीज सूखे मसाले के रूप में भोजन को खुशबू प्रदान कर स्वादिष्ट एवं पाचक बनाते है. औषधि प्रयोग के अंतर्गत पाचन संबंधित समस्याएं, जोड़ों के दर्द, स्नायु दुर्बलता, गठिया, एलर्जी, माईग्रेन नियंत्रण में उपयोगी हैं.
मेंथी (Fenugreek)	मुख्य रसायनों में ट्रायचोलीन, ट्रायगोनेलीन्स, जेनटियानिन्स, फलेवोनाइड्स कारपेंस, पाइरीडीन्स एवं पाइरोल्स, सेपोनीन्स, डायोजनीन होते हैं. इसके अतिरिक्त फाइबर म्यूसीलेज, गेलेक्टोमानन, अमीनो एसिड, अत्यधिक मात्रा में लौह तत्व, विटामिन ए.बी.-1 और सी, नियासिन, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटेशियम एवं फास्फोरस आदि रसायन होते हैं.	बीज मसालों का प्रमुख छौंक अवयव तथा पत्तियां सब्जी, पराठे, मठरी खाखरे आदि में प्रयोग होती है. औषधि के अंतर्गत पाचन संबंधित समस्याएं, मधुनाशक, कैंसर, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, कोलेक्ट्राल, मोटापा एवं किडनी व पित्ताशय स्टोन नियंत्रक, अंदरूनी व बाहरी दर्द, सूजन एवं बालों की समस्याओं के निवारण में प्रयोग की जाती है.
सौंफ (Fennel Seed)	वाष्पीय तेल (90 प्रतिशत) में एनीथॉल, फैन्हीहोन, मिथाइल चैव्हीकाल, फलेवोनॉइडस, क्यूमेरिन्स आदि रसायन होते हैं.	बीज मसाला एवं छौंक का अवयव, खाने को रूचिकर एवं पाचक बनाता है. औषधि के रूप में पाचन संस्थान से जुड़ी समस्याएं, डायरिया, वमन रोधक, मुखशोधक, मधुमेह, उच्चरक्तचाप एवं तनाव नियंत्रक है.

इंतजार करने वालों को सिर्फ उतना ही मिलता है
जितना कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं ।

-अब्दुल कलाम

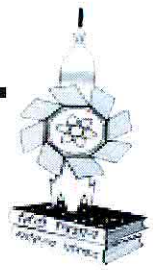

सारणी-2 स्मरण शक्ति वर्धक और मोटापा कम करने के विशेष 10 मसाले

स्मरण शक्ति वर्धक मसाले	मोटापा कम करने वाले मसाले
1. हल्दी Turmeric	1 अदरक Ginger
2. केसर Saffron	2.हल्दी Turmeric
3. पोदीना फूल Sage/Camphor flower	3.राई या सरसों Mustard
4. दालचीनी Cinnamon	4. इलायची Cardamom
5. तुलसी Basil	5. जीरा Cumin
6. अजवाइन Thyme	6. दालचीनी Cinnamon
7. अदरक Ginger	7. अश्वगंधा Ginsang
8. खसखस Khas Khas	8. लालमिर्च Red chilli or cayenne pepper
9. लहसुन Garlic	9. कालीमिर्च Black peepper
10. धनिया Coriander	10.सहपर्णी/कुकरौंधा Dandelions

सारणी-3 चोट-मोच-घाव के उपचार में उपयुक्त और शक्तिवर्धक 10 मसाले

चोट-मोच-घाव के उपचार के लिए		शक्तिवर्धक मसाले	
हल्दी	Turmeric	अजवाइन	Thyme
पोदीना फूल	Sage/Camphor flower	पोदीना फूल	Camphor flower
जायफल	Nutmeg	हल्दी	Turmeric
दालचीनी	Cinnamon	गोरमेटइटेलियन मसाला	Gourmet Italian spice
लहसुन	Garlic	पंपकिन पाई मसाला	Pumpkin pie spice
अदरक	Ginger	एपिल पाई मसाला	Apple pie spice
धनिया	Coriander	अजवाइन	Thyme
लालमिर्च	Cayenne	दालचीनी	Cinnamon
लौंग	Clove	लौंग	Clove
राई या सरसों	Mustard	खसखस	Khas Khas

होमीभाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2012 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

अदम्य साहसी महिला वैज्ञानिक कल्पना चावला की जीवनी

हरिश चन्द्र चौबीसा
सहायक आचार्य
लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
डबोक-313022, उदयपुर (राज.), मो.नं.-9460701033

1. प्रस्तावना

भारत में अनेक महान विभूतियों ने जन्म लिया और ऐसे-ऐसे कार्य करके भारत का नाम रोशन किया. उनमें वैज्ञानिक भी हुए, राजनेता भी हुए, अभिनेता भी हुई, कवि भी हुए, इतिहासकार भी हुए. ऐसे ही एक महान विभूति है महिला वैज्ञानिक श्रीमती कल्पना चावला. कल्पना चावला भारत में जन्मी हरियाणा के करनाल नामक ग्राम में जन्मी थी. वे एक ऐसी महान महिला के रूप में उभरी कि पूरे विश्व को उन पर नाज होने लगा. भारत की निवासी होने के बाद वे अमेरिका चली गईं उनकों रूचि थी अंतरिक्ष के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना हैं अंतरिक्ष की यात्रा करना और उन्होंने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वो कारनामा 1994 में कर दिखाया और उन्होंने भारत का नाम विश्व के इतिहास में लिखवा दिया और भारत की प्रथम महिला के रूप में अंतरिक्ष गईं और भारत की अंतरिक्ष यात्री बनी. कल्पना चावला के बारे में विस्तृत जानकारी अग्रलिखित है -

2. जीवन परिचय

कल्पना चावला का जन्म. जुलाई, 1961 में को हरियाणा के करनाल कस्बे में हुआ था. कल्पना चावला अंतरिक्ष में जाने वाली प्रथम भारतीय (बाद में उन्होंने अमेरिका की नागरिकता ले ली थी) महिला थी. कल्पना चावला के पिता का नाम श्री बनारसीलाल चावला तथा माता का नाम संज्योति था. वह अपने परिवार के चार भाई-बहनों में सबसे छोटी थी.

3. शिक्षा और शिक्षा में योगदान

कल्पना ने नीले आकाश को अपने दामन में समेटने की ललक विद्यार्थी जीवन से ही थी. वह जब पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज चण्डीगढ़ (पंजाब) में दाखिला लेने गयी थी तो अपने साथ हवाई जहाजों के अनेक मॉडल्स भी साथ ले गई थी. उसी समय कॉलेज के व्याख्याताओं ने समझ लिया था 'कल्पना' बहुत दूर तक जायेगी

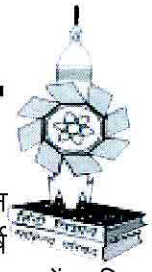

लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा था कि वह इतनी दूर जायेगी कि वहां से कभी लौटेगी भी नहीं.

कल्पना एरोनॉटिक इंजीनियर बनने के लिए इस कदर दृढ़ थीं कि उसे अन्य कई ट्रडों में दाखिला देने की पेशकश हुई लेकिन उसने इन्कार कर दिया. उन्हें यह बताने पर कि एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग लड़कियों के लिए ठीक नहीं है के बावजूद भी उन्होंने इसमें दाखिला लिया. उनका यह फैसला उनके पिता की इच्छा के भी खिलाफ था.

कल्पना पढ़ने में सबसे अव्वल थी, फिर भी उन्हें अपने काम से संतोष नहीं मिलता था. वे हमेशा बेहतर काम करना चाहती थी. उन्हें एकान्त पसंद था और यह शिकायत रहती थी कि लड़कियां उन्हें डिस्टर्ब करती है. वे अन्य छात्र/छात्राओं से बिल्कुल अलग थी. रोमांस और चुहलबाजी के लिए उनके पास समय नहीं था.

वे खाली समय में मौज-मस्ती करने की बजाय लैब में होती थी या लाइब्रेरी में या फिर अपने प्रश्नों का भंडार लेकर व्याख्याताओं के पास पहुंच जाती. उन्होंने अपनी दार्शनिक बातों तथा योग्यताओं से कॉलेज में ऐसी जगह बना ली थी कि सभी पसंद करते थे. इस प्रकार से कॉलेज में वह आम लड़की नहीं थी.

नासा में अंतरिक्ष अभियान के दूसरे सदस्य नियमित कक्षाओं में लेक्चर्स महज सुनते थे परंतु कल्पना सुनने के साथ-साथ नोट्स भी उतारा करती थी. कई मौकों पर वे प्रयोगों के बारे में कई तरह के सवाल पूछा करती थी जिनकी योजना अंतरिक्ष में करने के लिए बनायी जाती थीं.

कल्पना ने टेगौर बाल निकेतन उच्च माध्यमिक विद्यालय (करनाला) हरियाणा से वर्ष 1973 तक स्कूली शिक्षा प्राप्त की. तत्पश्चात उन्होंने पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज, चण्डीगढ़ (पंजाब) से वर्ष 1982 में बेचलर ऑफ इंजीनियरिंग कॉलेज (एयरोनोटिकल) टैक्सास विश्वविद्यालय, अमेरिका से वर्ष 1984 में मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग (एयरोनॉटिक) कोलोरेडा विश्वविद्यालय, अमेरिका से वर्ष 1988 में एयरोस्पेस इंजीनियरिंग में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की व पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज में तो एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग का अध्ययन करने वाली प्रथम छात्रा थी.

3. कल्पना चावला का कार्य क्षेत्र

कल्पना ने वर्ष 1988 में नाम के एम्स रिसर्च सेण्टर से क्लूड डायनामिक्स के क्षेत्र में अपना कैरियर शुरू किया. यहां काम सफलतापूर्वक करने के बाद उन्होंने वर्ष 1993 में कैलिफोर्निया के ओवर सेट मैथड्स इनकार्पोरेशन में अनुसंधान वैज्ञानिक और उपाध्यक्ष के रूप में उनका अंतरिक्ष वैज्ञानिक रूप में चयन किया गया. उन्होंने वर्ष 1995 में पन्द्रह सदस्यीय अंतरिक्ष यात्रियों के समूह में शामिल किया. उन्होंने एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद एस्ट्रानॉर ऑफिस, रोबोटिक्स एवं कम्प्यूटर ब्रांच के लिए तकनीकी की मुथे का दायित्व सौंपा गया. उन्हें वर्ष 1996 में मिशन स्पेशलिस्ट का भार सौंपा गया और वर्ष 1997 में अपनी पहली अंतरिक्ष उड़ान के साथ ही उन्होंने वर्षों पुराना अपना ख्वाब पूरा कर लिया.

(4) कल्पना का मोह

कल्पना का विदेश में विदेशी पति के साथ रहते हुए भी भारतीय संस्कृति से मोह बना रहा. वह अमेरिका में भी भारतीय भोजन की शौकीन थीं एवं पूरी तरह शाकाहारी थी और आम ग्रहिणी की तरह भोजन भी स्वयं ही बनाना पसंद करती थी. वह हर दृष्टि से अपने मूल देश भारत से अंतिम क्षणों तक जुड़ी रहीं.

कल्पना को मेधावी बच्चों से भी बेहद लगाव था. वे टैगोर बोल निकेतन उच्च माध्यमिक विद्यालय, करनाल (हरियाणा) जहां उन्होंने स्वयं अध्ययन किया वहां के दो विद्यार्थियों को वर्ष 1997 से नासा में आगे अध्ययन हेतु प्रायोजित करती थी, इसलिए तो करनाल की 'कल्पना' करनाल से दूर होते हुए भी करनाल के लोगों के दिलों में आज भी राज करती हैं. कल्पना गरीब छात्रों की हर तरह से मदद करने के लिए तैयार रहती थीं. एक बार नासा के इंटरनेशनल स्पेस स्कूल फाउण्डेशन ने दौरे पर आए अठारह देशों के मेधावी छात्रों के दल में दक्षिण अफ्रीका के 'विलामजी' को फटेहाल देखकर कल्पना ने उसकी पढ़ाई का जिम्मा उठाया और अपनी कमाई का एक हिस्सा विटवाटर्सलैंड यूनिवर्सिटी को दे दिया, ताकि उसकी पढ़ाई बेरोक-टोक जारी रह सके. बिलामजी का उद्देश्य कल्पना के सपनों को पूरा करना है.

5. कल्पना की उपलब्धियां

कल्पना ने जब अपने पिता से अंतरिक्ष इंजीनियरिंग की पढ़ाई की इच्छा जताई तो, उन्होंने डॉक्टर या टीचर बनने की नसीहत दी. पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज में जब वह साक्षात्कार में शामिल होने के लिए गयी, तो उनके पिता उनके साथ तक नहीं गए. इसकी बजाए उनकी माँ उनके कॉलेज साथ लेकर गई. वहां पहुंचने पर एक पुरूष प्रोफेसर ने उनसे कहा 'इजीनियरिंग महिलाओं के लिए नहीं है.' कल्पना ने लिंगभेद की परवाह किये बिना ही आखिर वहां

इंजीनियरिंग में प्रवेश ले लिया. वहां से बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त कर मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग के लिए अमेरिका भी चली गईं और विपरीत परिस्थितियों अंतरिक्ष यात्री बनने का अपना सपना साकार किया. कल्पना सिर्फ अन्तरिक्ष में ही उड़ान नहीं भरना चाहती थी बल्कि उनका सपना चांद की जमीन पर पांव रखने का भी था. 'मैं सितारों के लिए बनी हूं उन्हीं में खो जाऊंगी.' इसलिए उन्होंने एक दिन चांद पर जाने का भी सपना देखा था. वे कहा करती थी 'सिर्फ धरती को देखना, पृथ्वी पर रात वाले हिस्से में तारो को देखना, हमारी पृथ्वी को घूमते हुए आगे बढ़ते देखना और जिस गति से यह बढ़ती है तथा जिस विस्मय को यह प्रेरित करती है. सिर्फ इसी तरह के कई अच्छे विचार उस समय मन में भी आते है, जब आप सब देखते है.'

कल्पना ने अपने दूसरे अंतरिक्ष अभियान पर रवाना होने से पहले कहा, 'यहा दोबारा अच्छा सपना आने के समान है. ऐसा फिर से करना सपने को जीने जैसा है, एक अच्छा सपना एक बार फिर.'

उन्होंने एक साक्षात्कार में यह भी कहा, 'अंतरिक्ष मिशन के साथ जुड़ते ही अंतरिक्ष यात्रा का एक-एक पल मिशन का गिरवी हो जाता है. हमारी जिन्दगी का हर क्षण प्रशिक्षण में ही गुजरता है. हमें सोते, उठते और बैठते वक्त अगले मिशन का खाका तैयार करना पड़ता है. हमें सपने की अंतरिक्ष यानों के आते हैं. कई बार सपनेम में हम मौत से दो-दो हाथ करते रहते हैं. हम जीवन भर मौत और जिन्दगी के बीच संतुलन बनाते अपने मिशन को जारी रखते है. एक अंतरिक्ष यात्रा एक पल भी अंतरिक्ष के काल्पनिक स्त्रोतों से दूर नहीं हो सकती.

अंतरिक्ष यात्री के लिए सैकण्ड का 100-1000 वां हिस्सा भी बेहद महत्वपूर्ण होता है. पता नहीं किस क्षण सबकुछ खाक में तब्दील हो जाएं. जब कभी उनको आकाश के बारे में कुछ बनवाने को कुरेदा जाता था तो वे ग्रह और तारों की कहानियां ऐसे सुनाती थी जैसे कोई दादी मां उत्सुक बच्चों को परी की कथा सुना रही हों.

6.कल्पना की पहचान

कल्पना मूलतः भारतीय थी परंतु वह भारत की नागरिकता छोड़कर अमेरिकी नागरिक हो चुकी थी. उसका अंतरिक्ष में यह दूसरा अभियान था. इसके पहले भी वह इसी कोलम्बिया यान में 19 नवंबर से 5 दिसंबर, 1997 तक अंतरिक्ष में रही थी. उनके साथ वैज्ञानिक उन्हें के.सी.कहकर पुकारते थे. उनका जन्म हरियाणा के करनाल में. जुलाई, 1961 को हुआ था. उनके पिता का नाम बनारसी लाल चावला एवं माता का नाम संजयोतिरानी है. उनके संजय चावला, सुनील चावला, एवं दीपा चावला भाई-बहन है. वे अपने भाई-बहिन में सबसे छोटी एवं प्रतिभाशाली थी उनका घर का नाम 'मोण्टू' था.

7. कल्पना का विवाह

कल्पना का विवाह वर्ष 1984 में जीन पियरे हैरीसन से हुआ जो फ्रांसीसी-अमेरिकी थे. वे दोस्तों के बीच 'जे.पी.के नाम से जाने जाते हैं. हैरीसन टैक्सास विश्वविद्यालय में स्वतंत्र उड़ान प्रशिक्षक थे और कल्पना भी इसी विश्वविद्यालय में अध्ययनरत थी. उड़ान की बारिकियां समझाते-समझाते हैरीसन कब कल्पना को समझने लग गये, इसका कल्पना

को पता नहीं चला और वे दोनों परिवारों के शुरूआती विरोध के बावजूद भी एक सूत्र में बंध गये. परंतु कल्पना के सपनों ने कल्पना को 'मातृत्व का सुख' जो एक महिला की उत्कंठ अभिलाषा होती है, से वंचित रखा.

8. कल्पना के शौक

कल्पना को प्रकृति और हरियाली से विशेष लगाव था. वे पक्षियों को खास तौर पर निहारा करती थीं. सांझ ढलते ही जब कभी उन्हें फुर्सत मिलती थी तो वे समुद्र के किनारे घूमने चली जाती थी.

कल्पना बचपन में अपनी घर की छत से सितारों को बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखा करती थी. उसका करनाल से अंतरिक्ष तक का सफर एक मात्र ध्येय था. वह हवाई जहाज की उड़ानों को नापा करती थी. उस समय किसे पता था कि चित्र बनाने वाली कल्पना एक दिन वास्तव में उसमें उड़ान भरेगी. उनकी टैगोर बाल निकेतन उच्च माध्यमिक विद्यालय, करनाल (हरियाणा) की प्राचार्या विमला रहेजा बताती हैं, 'एक दकियानूसी समाज में रहने के बावजूद बचपन से ही कल्पना में क्रांतिकारी प्रवृत्तियां थी. वह बहिर्मुखी मेधावी लड़की थी और हमेशा लड़कों की बराबरी करना चाहती थी. वह लड़कों की भांति पेण्ट-शर्ट पहनकर साईकिलिंग करती थी और कराटे का अभ्यास भी करती थी. वे खेल भी लड़कों जैसे ही खेलती थी उसे मोटर साइकिल चलाना अच्छा लगता था.

कल्पना अपने भाई के साथ रोज फ्लाइंग क्लब जाती थी, जहां उनका भाई कॉमर्शियल पायलट का प्रशिक्षण ले रहा था. फ्लाइंग क्लब के विमान देखकर वह इतना उत्साहित होती थी कि वह अपने भाई के साथ मोटर साईकिल से उसका पीछा करती थी कि वह कहां जा रहा है खराब सेहत के कारण उसका भाई तो पायलट नहीं बन पाया, पर कल्पना के अंदर विमानों को करीब से देखने की वजह से एयरोनॉटिकल इंजीनियर बनने की धुन सवार हो गया.

कल्पना को संगीत का शौक था और वह स्वयं भी अच्छा गायक थी. वे कोलम्बिया अंतरिक्ष यात्रा में बीस सीडी साथ लेकर गयी थी जिनमें थेलोनियस मोंक और स्टीव वे से लेकर हरिप्रसाद चौरसिया, रविशंकर तथा नुसरत फतेह अली तक के एलबम मौजूद थे. इनका चयन करने में उनके पति ने भी उनकी मदद की थी. कल्पना भरतनाट्यम भी जानती थी.

कल्पना खाली समय में अध्ययन करती थी. अमेरिका में उसका घर पुस्तकों से भरा था. वहां उसके पास एक ट्रक

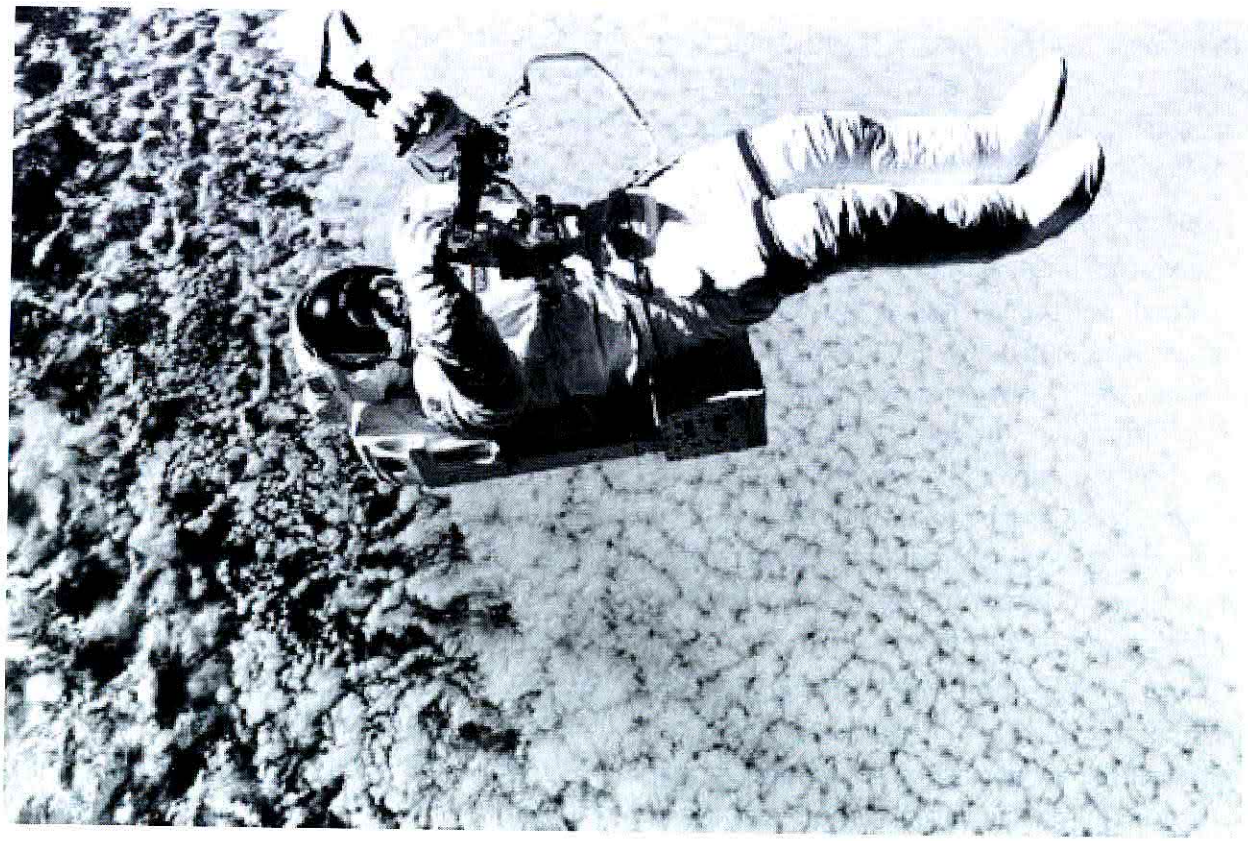

पुस्तकें थी, जबकि उनका खुद का सामान सिर्फ एक सूटकेस जितना ही था. वस्तुतः उनका घर, घर न लगकर पुस्तकालय लगता था.

9. कल्पना की अभिप्रेरणा

कल्पना में दार्शनिक होने का अग्रांकित विचार से अभिप्रेरणा प्रारंभ हुई, 'मैं एक कोने के लिए पैदा नहीं हुआ. पूरी दुनिया मेरी अपनी सरजमीं है.' उन्होंने पूरी पृथ्वी के साथ हमेशा ऐसा ही रिश्ता एवं भेदभाव महसूस किया है. वे पृथ्वी नहीं बल्कि पूरे ब्रह्माण्ड के साथ गर्मियों में बचपन में अक्सर तारों के नीचे आंगन में सोया करती थीं. वे एक-एक आकाशगंगा देखती थी एवं उन्हें कभी-कभी कुछ उल्कापिण्ड भी दिख जाते थे, उनमें उस समय से ही सितारों के प्रति विस्मय भाव शुरू हुआ. वे आकाश गंगा की निवासी बनना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने लग गयी.

कल्पना को एयरोनॉटिक्स को केरियर बनाने की अभिप्रेरणा भारत के महान उद्योगपति जे.आर.डी.टाटा से मिली, जिन्होंने देश में पहली बार विमान उड़ाया था. उनका विचार था, 'जे.आर.डी.टाटा ने उन दिनों जो किया वह बहुत जिज्ञासा पैदा करने वाला था और निश्चित तौर पर वह मेरे मन में रच-बस गया था.

कल्पना को खोजकर्ताओं और विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी कार्य करनेवाले लोगों के साहस भरे कार्य हमेशा प्रेरित करते रहे. उन्हें शेकलेन की दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचने और लेविस अमेरिका के आर-पास की यात्राओं ने शेकलेन के बारे में प्रकाशित पुस्तकों का भी काफी अध्ययन किया.

10. कल्पना का निधन

कल्पना का निधन कोलम्बिया की दुर्घटना के साथ ही 1 फरवरी, 2003 को हो गया. कल्पना की दूसरी ओर आखिरी उड़ान 16 जनवरी 2003 को स्पेस शटल कोलम्बिया से शुरू हुई...यह 16 दिन का अंतरिक्ष मिशन था जो पूरी तरह से विज्ञान और अनुसंधान पर आधारित था...इस मिशन में अंतरिक्ष यात्रियों ने 2 दिन 24-24 घण्टे काम किया था और 80 परीक्षण और प्रयोग सम्पन्न किये थे लेकिन 1 फरवरी, 2003 को कोलम्बिया स्पेस शटल लैंडिंग से पहले ही दुर्घटना ग्रस्त हो गया और कल्पना सहित सभी 6 अंतरिक्ष यात्रियों की मृत्यु हो गयी.

उनकी दूसरी उड़ान को देखने उनके माता-पिता और उनकी दोनों बहने भी भारत से अमेरिका गए थे और वहां पर उसकी वापसी का इन्तजार कर रहे थे, पर वक्त को कुछ और मंजूर था कल्पना वापस नहीं आई वह कल्पनाओं में खो गई.

11. कल्पना की स्मृति

कल्पना की असामयिक निधन पर हरियाणा सरकार ने उनके सम्मान में दो दिवसीय राजकीय शोक घोषित किया था, साथ ही उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए राज्य में दसवीं कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को 'कल्पना चावला स्वर्ण पदक' से नवाजा जायेगा और सभी इकतीस इंजीनियरिंग कॉलेज में जो छात्राएं सबसे अधिक अंकों के साथ उत्तीर्ण होगीं, उन्हें दो-दो हजार रूपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति चार वर्ष तक प्रदान की जाएगी. पंजाब सरकार द्वारा पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज, चण्डीगढ़ (पंजाब) में प्रतिवर्ष प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को स्वर्ण पदक सहित पच्चीस हजार रूपये का नकद कल्पना चावला स्मारक अवार्ड' दिया जायेगा.

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर द्वारा कल्पना की याद में राज्य के प्रत्येक जिले में माध्यमिक परीक्षा और उच्च माध्यमिक परीक्षाओं (कला/वाणिज्य/विज्ञान) में सर्वाधिक अंक अर्जित करने वाले छात्र और छात्राओं को दो-दो हजार रूपये नकद का पुरस्कार प्रदान किया जायेगा. इस प्रकार की पहल विद्यार्थियों को विज्ञान के प्रति प्रोत्साहित करने, उन्हें उच्च वैज्ञानिक आदर्शों की पालना करने एवं राष्ट्र निर्माण के लिए प्रतिबद्ध रहने और कल्पना चावला की स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए की गयी है ताकि भारतवासी कल्पना चावला को याद करते रहे.

12. कल्पना चावला के साक्षात्कार के कुछ अंश उनकी दूसरी उड़ान से पहले जो कहा था वो इस प्रकार है :-

प्रश्न : क्या आप बतायेंगी कि आपको अंतरिक्ष के विषय में कैसी रूचि हुई और इतनी की इसने आपको नासा की ओर मोड़ दिया. आप यहां कैसे आईं? यहां विज्ञान की कौन सी चीज ने आपको आकर्षित किया? क्या आपको इससे सहायता मिली?

जब मैं भारत में हाईस्कूल में पढ़ रही थी तो मैं सोचा करती थी कि मैं बहुत भाग्यशाली हूं जो करनाल जैसे शहर में जन्मी, जहां पर उस समय भी फ्लाइंग क्लब थे मैं छोटे-छोटे पुष्पक विमान उड़ते हुए देखती थी. मैं और मेरा भाई कभी-कभी साइकल चलाते हुए इन उड़ते हुए विमानों को देखा करते थे. साथ-साथ में अपने पिता जी से पूछती रहती थी कि क्या इन वायुयानों में बैठ कर सैर किया जा सकता हैं मैं समझती हूं, वहीं से मुझे ऐरोस्पेस इंजीनियरिंग के प्रति रूचि हुई. उम्र के साथ मैंने भारत के जे.आर.डी.टाटा का

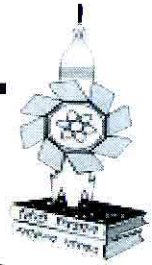

नाम सुना, जिन्होंने भारत में मेल भेजने के लिए वायुयानों का प्रयोग किया था. जब मैं पढ़ रहीं थी कोई मुझसे पूछता कि तुम बड़ी होकर क्या बनोगी तो मैं कहती ऐरोस्पेस इंजीनियरिंग करके इंजीनियर. मैं भाग्यशाली थी कि मुझे पंजाब कॉलेज में ऐरोस्पेस इंजीनियरिंग में जगह मिल गई यही मेरा सबसे प्रिय विषय था.

प्रश्न 2 : क्या आप बता सकती है कि किन-किन लोगों ने आपके जीवन को प्रभावित किया या अब भी आपके लिए प्रेरणा के स्त्रोत है?

कल्पना के द्वारा मुझे जीवन में अनेक लोगों से प्रेरणा मिली. सबसे अधिक अपने अध्यापकों और किताबों से.

13. कल्पना के दूसरी अन्तरिक्ष के कुछ तथ्य

1. प्रथम भारतीय अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्री जन्म

यहां भारत में हुआ बाद में वह अमरीकी नागरिक बन गई.

2. 1994 में कल्पना का अन्तरिक्ष यात्रा के रूप में चयन.

3. अमरिकी डाक्टरेट और ऐरोस्पेस इंजीनियरिंग में एम.एस.

4. अन्तरिक्ष में जाने वाली दूसरी भारतीय महिला पहले यात्री राकेश शर्मा थे.

5. फ्रांसीस जान पियर से शादी जो एक फ्लाइंग इंस्ट्रक्टर थे.

6. स्पेस शटल की यह 13वीं उड़ान थी.

7. सन् 2003 में सम्पन्न स्पेस शटल की 5वीं उड़ान.

8. 1986 में चेलेंजर दुर्घटना के बाद की 88वीं शटल उड़ान.

9. यह मिशन अल्फा स्टेशन की असेम्बली के लिए नहीं था.

10. कोलम्बियां स्पेस शटल की 28 दिन उड़ान.

11. शटल का 85वीं दिन का प्रमोचन.

12. केनेडी स्पेस सेण्टर 62वीं पूर्व निर्धारित लेंडिंग

13. 93 दिन की लैंडिंग.

14. केंडी स्पेस सेंटर में 48 वे दिन लैडिंग.

15. स्पेस शटल चेलेन्जर की दुर्घटना के 16.98 वर्ष बाद शटल मिशन.

16. स्पेस शटल चेलेन्जर की दुर्घटना के 6.196.96 दिन के बाद का मिशन.

14. उपसंहार

कल्पना ने अपनी योग्यता से संपूर्ण विश्व में भारत का नाम रोशन किया है. वह विश्व में नारी शक्ति का प्रतीक है और विश्व परिवार की धरोहर बन गयी है. उन्होंने भारतीय अंतरिक्ष महिला का खिताब पाकर अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित करा लिया है. सितारों की बाते करने वाली अंतरिक्ष पुत्री 'कल्पना' अंतरिक्ष में ही विलीन होकर स्वयं सितारा बन चुकी है परंतु धैर्य, इच्छाशक्ति, संकल्प, अदम्य, साहस, आत्म विश्वास और समर्पण से भरा-पूरा उसका जीवन विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बना रहेगा तथा उन्हें 'कल्पना' बनने की कल्पना कराता रहेगा.

कल्पना ने कोलम्बिया अंतरिक्ष यान से रवाना होने से पहले बच्चों के लिए अग्रांकित संदेश दिया था 'भौतिक लाभ ही प्रेरणा के स्त्रोत नहीं होने चाहिए. ये तो आप आगे भी हासिल कर सकते हैं. मंजिल तक पहुंचने का रास्ता तलाशिए. सबसे छोटा रास्ता जरूरी नहीं कि सबसे अच्छा रास्ता हो. मंजिल ही नहीं, उस तक का सफर भी अहमियत रखता है. प्रकृति की आवेगों को सुने-गुने. अपने सपने की मंजिल तक के सफर के लिए मेरी शुभकामनाएं. अपनी इस नाजुक पृथ्वी की अच्छी देखभाल कीजिए.'

कल्पना ने अंतरिक्ष से ई-मेल द्वारा अपने पूर्व प्रो.वी.एस.मल्होत्रा, पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज, चंड़ीगढ़ (पंजाब) को विद्यार्थियों के लिए पंक्तियां प्रेषित की थी - 'सपनों से सफलता को जाने वाला रास्ता है, बस उसे देखने के लिए एक नजर की जरूरत है, साथ ही उस पर चलने के साहस की भी और जरूरत है उस रास्ते पर संकल्प से चलने की.' इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा था 'मैं दुनिया के नये नजारे देख रही हूं.' पलटकर उनके प्रो.नं कहा 'सितारों के आगे जहां और भी है.'

कल्पना का बच्चों से यह भी संदेश कि अपने आप पर पुरा भरोसा रखों, हो सकता है कि तुम्हारे आस-पास के लोग तुम्हें प्रोत्साहित न करें परंतु तुम्हें स्वयं अपने आप को ही प्रोत्साहित करों. अगर तुम्हे अपने लक्ष्य पर भरोसा है तो तुम्हें एक दिन कामयाबी जरूर मिलेगी.

संदर्भ ग्रंथ-

1. *शिविरा पत्रिका-2003*
2. *राजस्थान पत्रिका संकलन*
3. *कल्पना चावला bharat discovery.org.India*

होमीभाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2012 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख

भारतीय पशुधन पर मंडराते सीमापार पशुरोगों के खतरे

डा.रमेश सोमवंशी
संयुक्त निदेशक, कैडरेड, भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान इज्जतनगर,
बरेली-243 122 उ.प्र.

कोई भी देश यह दावा नहीं कर सकता है कि वह पशुरोगों से मुक्त है. सीमापार के कई पशुरोग अत्यधिक संक्रामक हैं तथा उनमें अतिशीघ्रता से बिना किसी देश की सीमाओं को देखे फैलने की क्षमता रखते और गंभीर आर्थिक हानि पहुंचाते हैं. ये पशुरोग संवेदनशील पशुओं में अत्यधिक अस्वस्थता और मृत्युदर उत्पन्न करते हैं. इससे प्रभावित देशों की खाद्य सुरक्षा और अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है. इस बात के प्रमाण हैं कि सीमा पार के पशु रोगों के खतरे बढ़ रहे हैं. (चित्र-1) ये मानव और पशुओं दोनों को प्रभावित कर रहे हैं. अब हम मानव के कुछ उन विदेशी रोगों यथा एड्स, सार्स, इबोला तथा लासा ज्वर से परिचित हैं जो कि पिछले 30-35 वर्षों में बिना किसी चेतावनी के हमारे देश में प्रवेश कर गये. साथ कई पशुरोग भी चिंताजनक दर से उदीयमान हो रहे हैं जिनके कुछ उदाहरण है : बर्ड फ्लू, निपा, बीएसई,

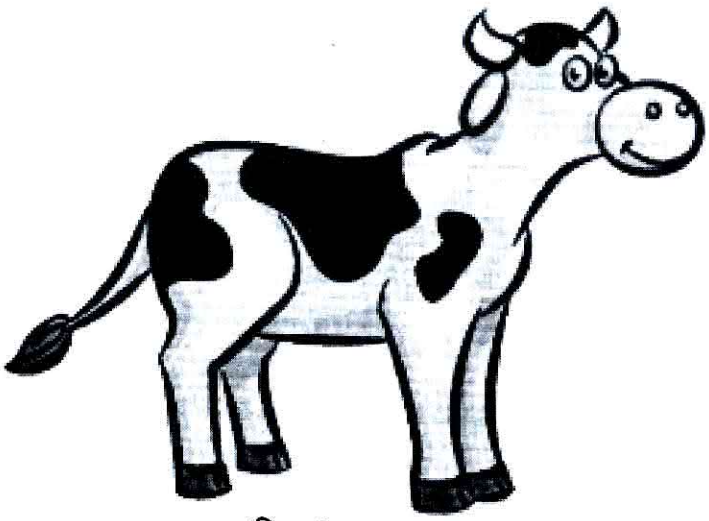

(चित्र-1)

हेंड्रा, सूकर फ्लू, सीसीएचएस तथा आईबीडी, एमडी के कुछ उग्र नये उपभेद. वाहक जन्य रोगजन्य जैसे वेस्ट नाइल, ब्लूटंग, रिफ्टवैली, सीसीएचएस आदि अधिक क्षेत्रों में फैल/प्रकट हो रहे हैं.

सन् 1994 में मानव प्लेग, सन् 2000 में सार्स तथा 2009 में एच1एन1 फ्लू के प्रकोप व भय ने इतिहास में पहली बार विश्व स्वास्थ्य संगठन ने गोलार्ध चेतावनी जारी किया. सीमापार के रोग दो प्रकार से हानिकारक हैं :

अनेक सीमापार पशुरोग पशुरोगजन्यता या जूनेटिक महत्व के हैं. वेस्टनाइल तथा क्रीमियन हीमेरेजिक ज्वर गंभीर मानव रोग उत्पन्न करते हैं. नवीनतम उदाहरण बर्ड फ्लू तथा एच1एन1 के प्रकोप हैं जिन्होंने समस्त विश्व को झकझोर दिया है. इनके महाप्रकोप के खतरे हैं. भारतीय मुक्त पक्षियों तथा कौओं की विभिन्न स्थानों यथा बिहार/महाराष्ट्र में मृत्यु शुभ संकेत नहीं हैं. सीमापार रोग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं पर गंभीर प्रभाव डाल रहे हैं. विश्व खाद्य संगठन के एक अनुमान के अनुसार पशु रोगों के कारण कुल 1/3 विश्व मांस व्यापार आयात रोक का सामना कर रहा है.

वैश्वीकरण के कारण लोगों तथा माल के आवागमन, पर्यटन, शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन के कारण सम्भवतया पशु विषाणु संपूर्ण पृथ्वी में फैल रहे हैं. वैश्विक समीकरण तथा वर्षा वनों में पशुधन के प्रवेश के कारण उन्हें कुछ रोगजन्य/वाहक प्राप्त हुए हैं जो पहले वन्यजीवों तक ही सीमित थे. प्रसंस्कारित खाद्य की अपेक्षा ताजे खाद्य का व्यापार तथा व्यापार व यात्रा के नये पथों ने रोगजन्यों व इनके वाहकों को लम्बी दूरी तक पहुंचने में योगदान दिया है. पहले सीमापार के रोग उष्ण जलवायु के प्रदेशों में सीमित थे किन्तु अब वे नये-नये क्षेत्रों तथा यूरोप, अमेरीका व आस्ट्रलिया में भी पहुंच गए हैं. सर्वोत्तम उदाहरण है - सन् 2006 के पश्चात ब्लूटंग रोग का कई यूरोपीय देशों तथा बेल्जियम, जर्मनी, नीदरलैंड, फ्रांस, यूके आदि पहुंचना. प्रस्तुत लेख में ऐसे ही कुछ पशुरोगों, उनकी अच्छी जैव सुरक्षा, प्रयोगशालीय जैव सुरक्षा, जैव निरोधक उपायों के अभ्यास द्वारा शीघ्र निदान, सतर्कता तैयारी व नियंत्रण द्वारा देश की खाद्य सुरक्षा की जाए पर चर्चा की जा रही है.

सूकरों के तीन मुख्य घातक प्रकोपीय रोगों में अफ्रीकी सूकर ज्वर, सूकर जलस्फोटकीय रोग तथा खुरपका और मुंहपका रोग हैं. अफ्रीकी सूकर ज्वर अतिघातक रोग है क्योंकि यह अत्यधिक संक्रामक प्रकृति का है तथा यह विविध विधियों से प्रसारित होता है. इसकी अत्यधिक अस्वस्थता तथा मृत्युदर है तथा इसका कोई विशिष्ठ उपचार अथवा टीका भी उपलब्ध नहीं है. यूरेशिया में इसके प्रसार को देखते हुए मई, 2011 में विश्व खाद्य संगठन ने इसे

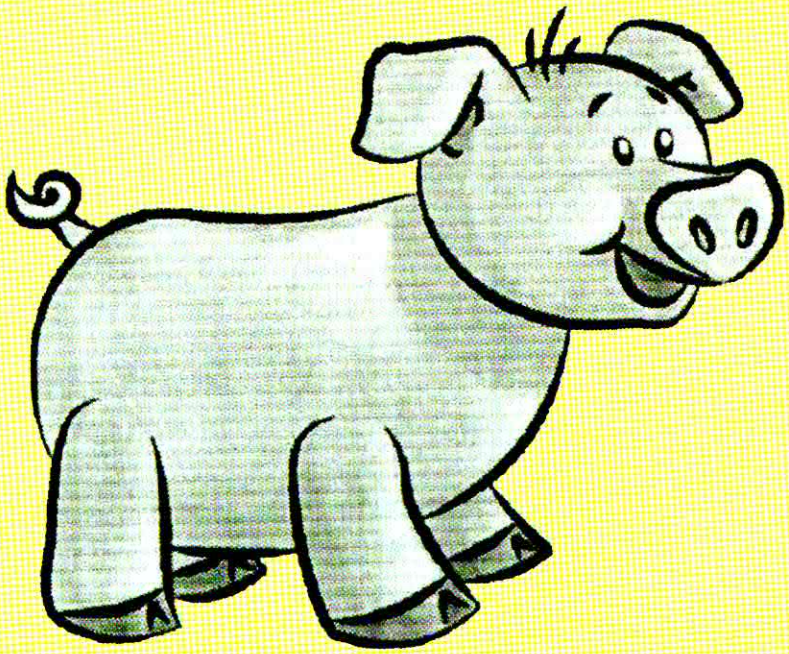

(चित्र-2) अफ्रीकी सूकर ज्वर

गोलार्द्ध हेतु खतरा माना है. सन् 2010 में इसके प्रकोप रूस, आर्मेनिया तथा चाड में हुए. यह इटली के सार्डीनिया प्रान्त में स्थानिक है. सन् 1999 में इसका एक प्रकोप पुर्तगाल में भी हुआ जहां 6 सूकर मरे व शेष 38 का वध कर, वहीं दफनाकर इस रोग को नियंत्रित किया गया. अफ्रीकी सूकर ज्वर के प्रकोपों ने कोस्टा डी आइवरी, मोजाम्बिक, सेनेगल, नाइजेरिया, टोगो तथा हाल ही में गाम्बीया, घाना तथा मेडागास्कर में अनेक सूकर झुण्डों का सफाया कर दिया है. सन् 1996 से विश्व खाद्य संगठन, अफ्रीका के कई देशों में तकनीकी सहायता परियोजनाओं द्वारा अफ्रीकी सूकर ज्वर का नियंत्रण व उन्मूलन में सहायता कर रहा है.

अफ्रीकी सूकर ज्वर का कारण एक डीएनए विषाणु है जिसे पूर्व में इरीडोविषाणु में वर्गीकृत किया गया था तथा वर्तमान में इसे एसफारविरिडी में रखा गया है जिसका अर्थ है अफ्रीकी सूकर ज्वर एवं संबंधित विषाणु. विषाणु के विभिन्न उपभेद रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं किन्तु इसका एक ही सीरमी प्रकार है. अफ्रीकी सूकर ज्वर रोग का ऊष्मायनकाल 05-15 दिन हैं, तथा इसके पश्चात अतितीव्र, तीव्र, उपतीव्र या चिरकारी प्रकार की रूग्णता उत्पन्न होती है. इसमें क्रमशः मृत सूकरों का मिलना, शत-प्रतिशत (100 प्रतिशत), 30-70 प्रतिशत या, 30 प्रतिशत से कम मृत्यु होती है. अतितीव्र प्रकार में मृत या मरणासन्न सूकर पाये जाते हैं. तीव्र प्रकार में ज्वर, क्षुधाहीनता, निष्क्रियता, त्वचा में नीलिमा या लालिमा, दस्त, वमन, खांसी, कष्ट श्वांस, गर्भपात, अन्तराल पर ज्वर के लक्षण आदि पाये जाते हैं. उपतीव्र प्रकार में मन्दरूग्णता, गर्भपात व अन्तराल पर ज्वर के लक्षण पाये जाते हैं. चिरकारी प्रकार में न्यून रूग्णता के साथ सूकरों में अवरूद्ध वृद्धि तथा दुर्बलता देखी जाती है. इन सूकरों में प्रायः द्वितीयक संलक्षण यथा निमोनिया, संधिशोध व लंगड़ापन पाया जाता है. तीव्र तथा उप तीव्र प्रकार के रोगी एक से छह सप्ताह तक रोग कारक विषाणु फैलाते रहते हैं.

शव परीक्षण करने पर वृक्कों, स्वरयंत्र, मूत्राशय की श्लेश्मकला और अंगों के उदरीय सतह पर सूचकांक रक्तस्राव पाये जाते हैं. लसीका ग्रन्थियां वृहदाकार और रक्तस्रावीय होती है. पैरों और उदर की त्वचा पर इकाइमोटिक प्रकार का रक्तस्राव होता है. तिल्ली भी वृहदाकार होती है तथा उदर, फुस्फुस तथा हृदयावरणी गुहाओं में अधिक द्रव पाया जाता है. पित्ताशय तथा आंत्रयोजनी में शोफ पाया जाता है.

अफ्रीकी सूकर ज्वर तथा पारम्परिक सूकर ज्वर के एक जैसे लक्षण और शव-परीक्षण क्षतियां होती हैं अतः इनका प्रयोगशालीय परीक्षणों द्वारा निदान आवश्यक होता है. रोग का निदान सीरम, तिल्ली, वृक्क अथवा लसिका पर्वों से विषाणु पृथकीकरण, ऊतकों में प्रदर्शन, अति संवेदनशील पीसीआर परीक्षण द्वारा विषाणु का आनुवंशिक पदार्थ ज्ञात करना तथा सीरम विज्ञानी परीक्षणों यथा एलाइसा, अप्रत्यक्ष प्रदीप्ती प्रतिपिंड परीक्षण, प्रतिरक्षी इलेक्ट्रोफोरेसिस आदि परीक्षणों द्वारा निदान करते हैं. अफ्रीकी सूकर ज्वर का विभेदात्मक निदान पारम्परिक सूकर ज्वर, इरीसिफेलास, पाश्चरूल्लेता, तीव्र साल्मोनेल्लता, रक्त विषाक्तता आदि से करते हैं.

चूंकि रोग का प्रभावी उपचार या विशिष्ट टीका उपलब्ध नहीं हैं अतः विदेशों में रोगी झुण्डों के सभी पशुओं का वध करके उनके शवों, बिछाली आदि को प्रभावी विधि से निस्तारित करते हैं. सूकरशाला को भलीभांति स्वच्छ व विसंक्रमित करते हैं. प्रकोप के समय सूकरों के आवागमन को नियंत्रित करते हैं तथा रोगी झुण्डों में सतत जांच प्रक्रिया जारी रहती है.

रोग का प्रसार सूकरों का सूकरों से संपर्क, मानव या रोग संयंत्रों से यांत्रिक विधि, दूषित सुईयों, किलनियों तथा अन्य काटने वाले कीटों, जुओं तथा कच्चे कचरे द्वारा होता है. तीव्र संक्रमित सूकरों के स्रावों व निःस्रावों में अफ्रीकी सूकर ज्वर विषाणु की अत्यधिक मात्रा होती है. विषाणु वातावरण और मांस में जीवित रहता है तथा रोग प्रसार होता है. अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों व बंदरगाहों का खानपान कचरा रोग प्रसार का उत्तम साधन है.

सूकर जलस्फोटकीय रोग - सूकर जलस्फोटकीय रोग विषाणु हालांकि खुरपका और मुंहपका विषाणु रोग से भिन्न है किंतु नैदानिक रूप में यह खुरपका और मुंहपका रोग के समतुल्य है. यूरोप या दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों में रोग होने की संभावना होती है किंतु इसका खतरा कम है. आयरलैंड इस रोग से मुक्त है तथा वहां सूकर मांस उत्पादों का आयात नहीं किया जाता है. उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड भी सूकर जलस्फोटकीय रोग से मुक्त हैं. सूकर जलस्फोटकीय रोग खुरपका और मुंहपका रोग की भांति उत्पादन पर कम प्रभाव डालता है. यह मंद प्रकार का रोग है. यह मूलरूप से सूकरों का रोग है तथा गौवंश, भेड़, बकरी व अन्य प्रजातियों को संक्रमित नहीं करता है. तो क्या कारण है कि यूरोपीय यूनियन इसको इतना अधिक महत्व देती है तथा रोगी पशुओं के निदान पर महंगी वधनीति अपनाती है? यदि यह रोग खुर एवं मुंहपका

से मुक्त क्षेत्रों में फैल गया तो सूकर पालक व पशुचिकित्सक इस रोग का प्रतिवेदन नहीं करेंगे व खुरपका और मुंहपका रोग के प्रसार का खतरा बढ़ जाएगा.

सूकर जलस्फोटकीय रोग एक आरएनए विषाणु से उत्पन्न होता है जो कि पिकोरना-विरीडी कुल तथा जीनस इन्टेरो विषाणु का सदस्य हैं. यह एक तीव्र, संक्रामक, ज्वरीय रोग है जिसमें मुंह, थूथन, पैर, थनों आदि में जलस्फोटकीय तथा बाद में आबुर्द पाये जाते हैं. रोग कारक विषाणु श्लेष्मा प्रतिरोधी है तथा यह नमकयुक्त शुष्क तथा धूम उपचारित मांस में बना रहता है. रोग का संचरण सूकरों को मांसयुक्त कचरा खिलाने, संक्रमित पशु लाने, लारी आदि में उपस्थित प्रत्यक्ष संक्रमित मल से संपर्क आदि से होता है. रोग को ज्वर, मुंह, थूथन और पैरों में फफोलों, लंगड़ापन, असमान्य या झटकेदार चाल आदि लक्षणों से पहचानते हैं. फूटे हुए फफोलों से छाले आर्बुद बन जाते हैं तथा पैर पाद ढीला होकर निकल जाता है. युवा पशु अधिक प्रभावित होते हैं. रोगी पशु एक सप्ताह में ठीक हो जाते हैं. रोग से मृत्यु नहीं होती है. एलाइसा तथा पीसीआर परीक्षणों से रोग निदान कर सकते हैं. यूरोप में वधनीति से रोग नियंत्रण करते हैं. इसका कोई टीका नहीं है तथा उपयोग की अनुमति भी नहीं है. रोग का खुरपका और मुंहपका रोग से विभेदात्मक प्रयोगशालीन निदान आवश्यक है.

सूकर पुनरूत्पादनीय एवं श्वनीय संलक्षण (पी आर आर एस) - इस रोग को 'नील कर्ण या ब्लू इयर रोग' भी कहते हैं. इसे पहली बार अमेरिका में सन् 1980 के मध्य में ज्ञात हुआ तथा इसे 'अज्ञात सूकर रोग' नाम से भी जाना गया. हाल में रोग कारक विषाणु को आरटरी विषाणु में वर्गीकृत किया गया है. यह रोग सूकर के सभी प्रकार के झुण्डों तथा अन्तः या बाह्य इकाईयों में होता है. जब विषाणु सूकर झुण्ड में प्रवेश करता है तो सभी आयु व वर्गों के सूकरों को प्रभावित करता है.

सूकरों में क्षुधाहीनता, 39-40 डिग्री से.ज्वर, गर्भपात, कानों में नीलिमा, पुनरूत्पादीय विकार, खांसी व श्वसनीय लक्षण पाये जाते हैं. बच्चा देने वाली सूकरियों में अदुग्धता, थनैला, सुस्ती, मृतजन्म, दुर्बल शावकों का जन्म, खांसी व निमोनिया पैदा होता है. छह सप्ताहों तक तीव्र अवस्था रहती है. नवजात सूकरों की मृत्युदर 70 प्रतिशत तक पहुंच सकती है. प्रजनन संबंधी समस्याएं चार से आठ माह तक रहती हैं और मृतजन्म 30 प्रतिशत तक बढ़ सकता है. सूकर शावकों में दस्त व अधिक श्वसन समस्यायें व मृत्यु उत्पन्न हो जाती है.

पीआरआरएस विषाणु की एक विशिष्टता है कि वह भक्षक कोशिकाओं के प्रति स्नेह रखता है. यह रक्षक कोशिकाएं होती हैं. ये जीवाणुओं को हजम करती व निकाल देती हैं. इसके विपरीत यह विषाणु इन भक्षण कोशिकाओं में विभाजित

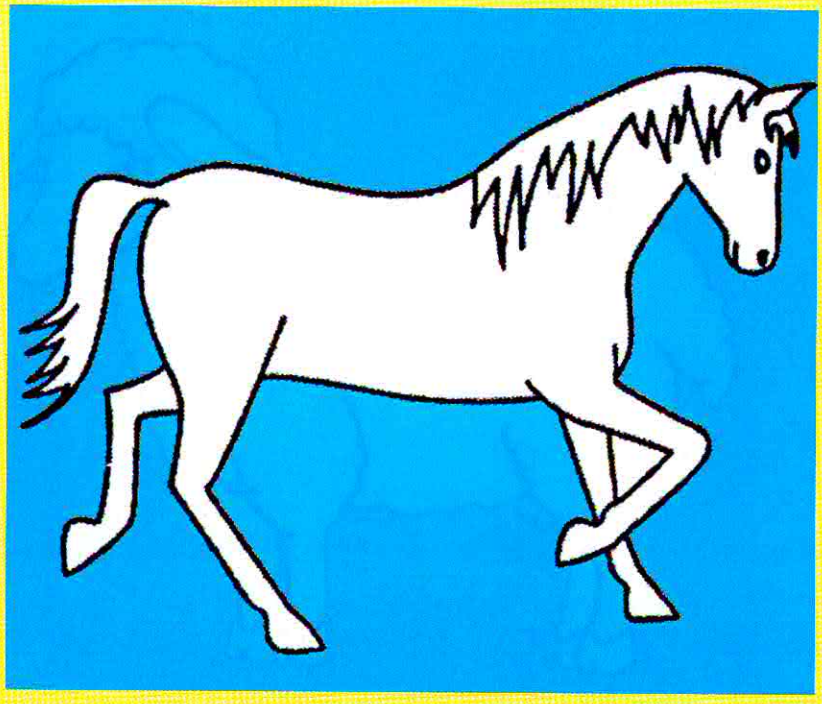

(चित्र-3) अफ्रीकी अश्व रूग्णता

करता है और उन्हें नष्ट करता है. यदि 40 प्रतिशत भक्षक कोशिकाएं नष्ट हो जाती है तो शरीर की प्रमुख रक्षा प्रणाली समाप्त हो जाती हैं. इसी कारण बढ़ते/तैयार होते सूकरों में स्थानिक निमोनिया उत्पन्न हो जाती है.

संक्रमण एक वर्ष में संपूर्ण झुण्ड में पहुंच जाता है. रोग का नैदानिक परिदृश्य विभिन्न होता है. जिस झुण्ड में प्रथम बार संक्रमण होता है रोग को पहचानना कठिन होता है. दूसरे वर्ष में मन्द और तीसरे वर्ष में तीव्र रूग्णता उत्पन्न होती है. रोग का निदान नैदानिक लक्षणों, शव परीक्षण क्षतियों, झुण्ड में विषाणुओं की उपस्थिति तथा सीरम विज्ञानी परीक्षण द्वारा किया जाता है. न्यूनतम बारह व्यस्क सूकरों से क्षुधाहीनता के समय नमूना संग्रह करते हैं.

यह एक अत्याधिक संक्रामक और प्राण घातक रोग है. आम तौर पर यह अश्ववंशीय पशुओं यथा घोड़ों, गधों, खच्चरों व जेब्राओं को प्रभावित करता है तथा रोग कुल रियोविरिडी तता जीनस आरबो द्वारा उत्पन्न होता है. रोग कारक विषाणु के नौ सीरमी प्रकार होते हैं तथा विषाणु का प्रसार कीट वाहकों द्वारा होता है.

अफ्रीकी अश्व रूग्णता विषाणु रोग को अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान में कई सौ वर्षों से जाना जाता है. यह रूग्णता उप सहारीय अफ्रीका में स्थानिक है. रोग मोरक्को, मध्य-पूर्व, पाकिस्तान, भारत आदि देशों में फैल चुका है. सन् 1960 के दशक में भारत में 20-30 हजार घोड़े इस रोग के शिकार व कालग्रस्त हुये थे. यह रूग्णता अमरीका, पूर्वी-एशिया तथा आस्ट्रेलिया में कभी भी नहीं हुई है. सन् 1990 के आस-पास यह रोग स्पेन तथा पुर्तगाल में हुआ तथा इसे प्रभावी उपायों से नियंत्रित किया गया.

रोग प्रकोप व प्रसार परपोषी-वाहकों की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है. रोग स्थानिक क्षेत्रों में, इस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाहक काटने वाली मिज क्यूलीकायडीस है जिसे गर्म व नम स्थान प्रिय हैं. रोग अस्थानिक क्षेत्रों में, ठंडी सर्दी, प्रकोप-चक्र को तोड़ देती है. अन्य प्रजाति के मच्छर यथा क्यूलेक्स, एनोलीस और एडीस तथा किलनियों की प्रजाति हायलोमा तथा रिफीसिफेलस से भी रोग प्रसारित होता है. घोड़े, सर्वाधिक संवेदनशील परपोषी हैं जिनमें 90 प्रतिशत मृत्यु होती है. इस के पश्चात खच्चरों में 50 तथा गधों में 10 प्रतिशत मृत्यु होती है. अफ्रीकी मूल के गधों व जेब्रा में कदापि ही नैदानिक लक्षण प्रदर्शित होते हैं हालांकि इन के रक्त में विषाणु का सूचकांक अत्यधिक होता है अतः इन्हें विषाणु का प्राकृतिक आगार समझा जाता है.

अफ्रीकी सूकर ज्वर चार विविध प्रकारों में पाया जाता है : श्वसनीय, हृदीय, मंद (ज्वरीय) तथा मिश्रित प्रकार. श्वसनी प्रकार वास्तव में अतितीव्र प्रकार का रोग है जोकि अत्यधिक ज्वर, अवसादन व श्वसनी संक्रमओं द्वारा जाना जाता है. रोगी घोड़ों में असमान्य श्वसन, खांसी के साथ

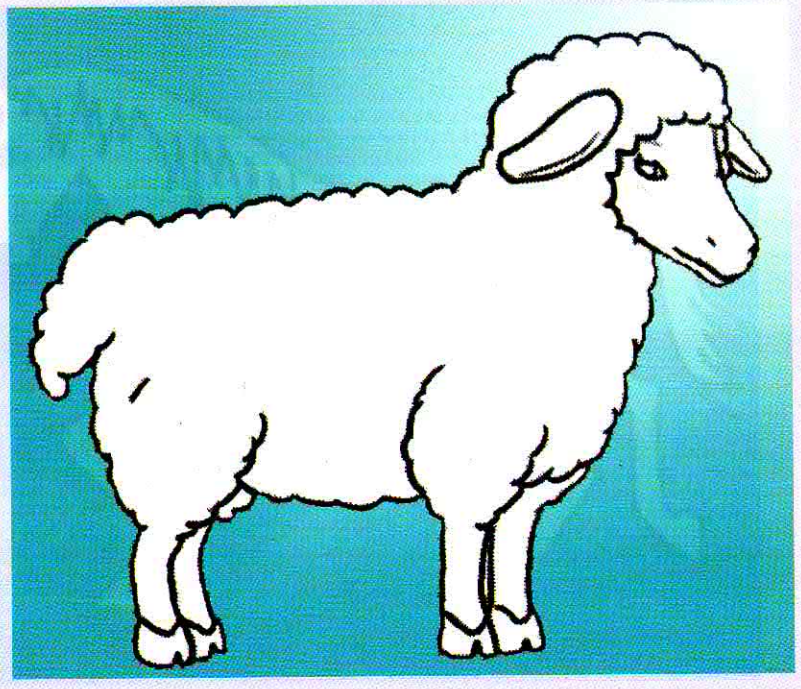

(चित्र-4) भेड़ों का बार्डर रोग

नासिका तथा मुंह से झाग युक्त द्रव तथा चार दिनों पश्चात श्वसनीय शोफ प्रकट होता है. फेफड़ों में अत्यधिक रक्ताधिक्य के कारण श्वसन घात तथा पशु की 24 घंटों में मृत्यु हो जाती है. हृदीय प्रकार वास्तव में उपतीव्र प्रकार की रूग्णता है. यह संक्रमण के 7-12 दिनों पश्चात उत्पन्न होती है. उच्च ज्वर आम लक्षण हैं. रोग के प्रमुख लक्षण हैं - नेत्रष्लेश्मकलाशोध, उदरीय शूल, प्रगमनीय कष्टश्वसन आदि. इसके अतिरिक्त सिर, ग्रीवा, जबड़ों के मध्य, नेत्रष्लेश्मकला में शोफ उत्पन्न होता है. तृतीय प्रकार की रूग्णता मंद से उपनैदानिक होती है जो कि जेब्राओं तथा अफ्रीकी गधों में पायी जाती है. रोगी पशुओं में मंद ज्वर तथा श्लेष्मकलाओं में रक्ताधिक्य पाया जाता है. मिश्रित प्रकार का ज्ञान शव परीक्षण करने पर होता है जिसमें श्वसनीय तथा हृदीय प्रकार की मिश्रित क्षतियां मिलती हैं. रोग का अनुमान विशिष्ट नैदानिक लक्षणों, शव परीक्षण क्षतियों और कीट वाहकों द्वारा लगाया जाता है. इसका सुनिश्चय विषाणु पृथक्कीकरण, रियल टाइम पीसीआर द्वारा विषाणु आरएनए ज्ञात करना, एन्टीजन कैप्चर एलाइसा तथा संक्रमित उतकों में प्रतिरक्षी प्रदीप्ती परिक्षों द्वारा होता है. ठीक हुये पशुओं को ज्ञात करने के लिये सीरम विज्ञानी परीक्षण द्वारा प्रतिपिण्ड ज्ञात करते हैं.

अफ्रीकी अश्व रूग्णता का कोई विशिष्ट उपचार ज्ञात नहीं है. स्थानिक क्षेत्रों में रोग नियंत्रण संगरोध, वाहक नियंत्रण तथा टीकाकरण द्वारा करते हैं. रोग बचाव हेतु प्रभावित घोड़ों का वध तथा असंक्ररिम घोड़ों का विषाणु के विरूद्ध टीकाकरण करते हैं. वर्तमान में इस रोग के विरूद्ध बहु संयोजी, एकल संयोजी तथा एकल संयोजी निश्क्रियकृत टीके उपलब्ध हैं. कीटनाशकों का प्रयोग कर वाहक कीटों के नैसर्गिक वासों को नष्ट करना चाहिये.

यह भेड़ों और बकरियों का संक्रामक आनुवंशिक रोग है. चूंकि सर्वप्रथम रोग का प्रतिवेदन इंग्लैण्ड और वेल्स की सीमा पर हुआ था अतः इसे बार्डर रोग कहते हैं. आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में इसे 'हेयरी शेकर रोग' के नाम से जाना जाता है. रोग को ठाली युवा भेड़ों, गर्भपात, मृतजन्म, दुर्बल, निरंतरित संक्रमित मेमनों आदि से पहचाना जाता है जोकि कम्पन, असामान्य शारीरिक गठन तथा केशीय युक्त होते हैं. रोग का आर्थिक महत्व पुनरूत्पादनीय असफलता, गर्भपात तथा प्रभावित मेमनों की कम सजीवता के कारण है.

रोग का कारण फ्लेवीविरीडी जीनस का एक पेस्टी विषाणु है जो कि पारंपारिक सूकर ज्वर तथा गौवंशीय विषाणु दस्त विषाणु रोग से निकटता से संबंधित है. बार्डर रोग विषाणु विश्व व्यापी है तथा इसके तीन प्रतिजनीय प्रकार हैं. यह विषाणु ऊतक संवर्धन में अकोशिकीय रूग्णताजन्य है. रोग का विभिन्न देशों व क्षेत्रों में आघटन 5 से 50 प्रतिशत है. बकरियों में रोग विरल है तथा गर्भपात से पहचाना जाता है. भ्रूण के संक्रमण के परिणाम स्वरूप निरंतर संक्रमित मेमने उत्पन्न होते हैं. ये मेमने विषाणुरक्तीय, प्रतिपिण्ड ऋणात्मक तथा लगातार विषाणु स्रावित करते रहते हैं. इस प्रकार भेड़ से भेड़ संक्रमित होती रहती हैं. नैदानिक लक्षणों के आधार पर निदान में सहायता मिलती है हालांकि भेड़ों के रूक्ष आवरण व असमान्य केशीय दृश्य नहीं होते हैं. रोग का सुनिश्चिय विशिष्ट रोगजन्य क्षतियों (प्रभस्तिष्क में गुहीकरण, श्वेत पदार्थ में सूक्ष्म क्षतियां-माइलिन न्यूनता तथा ग्लायल कोशिकाओं में वृद्धि तथा माइलिन जैसी वसीय बुंदकों का संग्रहण) के आधार पर होता है. विशिष्ट हेयरीशेकर मेमनों के रक्त और ऊतकों में विषाणु का प्रदर्शन करते हैं. एलाइसा द्वारा विषाणु प्रतिजन प्रदर्शन तथा आरटी-पीसीआर विषाणुयीय आरएनए प्रदर्शित कर सकते हैं. फाइलोजेनेटिक विभेदन से तीनों पेस्टीविषाणुओं पारंपारिक सूकर ज्वर, बीवीडीवी तथा बार्डर रोग का विभेदन कर सकते हैं. रोग का विशिष्ट उपचार नहीं है तथा न ही इसका कोई टीका उपलब्ध है.

सीमा पार उद्दीयमान रोगों से बचाव का उपाय है उनके प्रति हमारी जागरूकता तथा निदान, बचाव तथा रोकथाम हेतु समुचित तैयारी. इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारे वैज्ञानिक इन रोगों के निदान हेतु प्रशिक्षित तथा दक्ष हों. ऐसे रोगों का निदान उच्चस्तरीय जैव सुरक्षा प्रयोगशाला में करते हैं ताकि रोग का संवेदनशील पशुओं में प्रसार न हो. ऐसी प्रयोगशालाओं में विशिष्ठ नैदानिक, प्रतिकारक, प्रतिजन, प्रतिपिण्ड तथा अन्य सुविधायें होनी चाहिए. खाद्य एवं कृषि संगठन/ओ.आई.ई. भी रोग निदान तथा टीका निर्माण में सहायता करते हैं. भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के पशुपालन आयुक्त भी इस प्रकार के रोगों के प्रकोपों/समस्याओं पर समय-समय पर समीक्षा तथा निदान व रोकथाम के उपाय लागू करने पर विचार करते हैं. भारत में इस प्रकार की समस्याओं से निपटने के लिए भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के भोपाल परिसर में उच्च सुरक्षा पशु रोग प्रयोगशाला, इज्जतनगर में पशु रोग अनुसंधान केंद्र (सी.डी.डी.एल/कैडराड) तथा जालंधर, पुणे, कोलकाता, बैंगलोर व गुवाहटी में क्षेत्रीय रोग निदान प्रयोगशालायें (आर.डी.डी.एल) हैं. भारत ऐसे सीमा पार रोगों के खतरों से निपटने हेतु पूरी तरह से सक्षम है.

नई एंटीबायोटिक दवाओं के 'खोज ईंजन' का निर्माण

रूसी रसायन शास्त्रियों ने नयी एंटीबायोटिक दवाओं की खोज की एक स्वचालित प्रणाली विकसित की है.

प्रस्तावित प्रौद्योगिकी चिकित्सा क्षेत्र की वर्तमान की एक बड़ी समस्या यानी दवाओं के प्रति बैक्टेरिया के बढ़ते प्रतिरोध को हल करने में सहायक होगी.

आजकल नई एंटीबायोटिक दवाएँ बहुत कम आ रही हैं, लेकिन मौजूदा दवाओं के प्रति अधिकाधिक बैक्टेरिया आदि

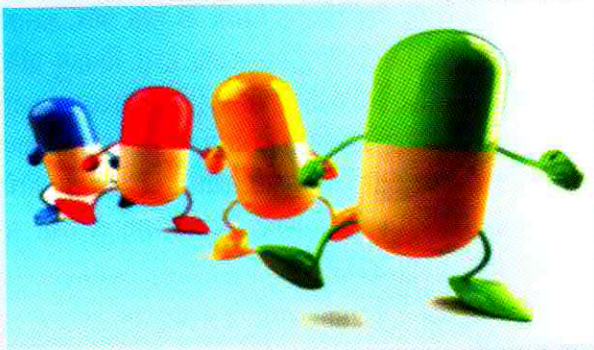

होते जा रहे हैं. इस प्रकार का असंतुलन मानवजाति को नए बैक्टेरिया संक्रमण की गिरफ्त में खींचता जा रहा है. इस चुनौती का जवाब मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के रसायनविद तलाश रहे हैं और उन्होंने एंटीबायोटिक दवाओं की तलाश की एक रोबोट प्रणाली प्रस्तुत की है. भविष्य में यह प्रणाली अगली पीढी की नई दवाएं बना सकेगी.

आमतौर पर नई एंटीबायोटिक दवा की खोज उम्मीदवार पदार्थ की जीवाणुरोधी गतिविधि की जांच से शुरू होती है अगर उम्मीदवार पदार्थ जीवाणु पर विजयी रहता है तो वैज्ञानिक इस पदार्थ की कार्य-प्रणाली का अध्ययन शुरू करते हैं. यह एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया है. लेकिन यह समझे बगैर कि यह नई दवा असर कैसे डालती है, उसे पंजीकृत नहीं किया जा सकता है. मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एंटीबायोटिक दवाओं के तलाश की एक अधिक बहुमुखी और सुविधाजनक योजना विकसित की है. यह योजना पहली ही स्क्रीनिंग में यह निर्धारित कर सकती है कि सक्रिय पदार्थ का लक्ष्य पर कैसा असर पड़ रहा है.

कई नई एंटीबायोटिक दवाओं की जांच एक साथ करने के लिए रसायन विदों ने एक रोबोट का इस्तेमाल शुरू किया है, जो एक समय पर कई समान आपरेशन कर सकता है. शोध में एक साथ दस हजार रासायनिक यौगिकों के परीक्षण की योजना है.

मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय के प्राकृतिक यौगिक रसायन विभाग के प्रोफेसर और इस परियोजना के प्रमुख प्योतर सेर्गियेव ने बताया कि दुनिया में इस तरह के और भी सेंसर हैं, लेकिन वह उन नियामक प्रणालियों का उपयोग करते हैं, जो कुछ ज्ञात एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति संवेदनशील हैं. हमने अधिक कठिन चुनौती को सामने रखा था - एक ऐसी प्रणाली के निर्माण का लक्ष्य रखा था जो एकदम नए ऐसे रासायनिक यौगिक की तलाश करे, जो एंटीबायोटिक दवाओं के नए वर्ग में पहला हो, इस सन्दर्भ में रूस की इस नई खोज का दुनिया में कोई समकक्ष नहीं है.

फीलगुड हार्मोंस से होता है मूड अच्छा

अक्सर ठहाका लगाने के हजार फायदे सुनने को मिल जाते हैं. लेकिन, रोने के नाम पर सभी कहते हैं कि रोना कमजोरी की निशानी है. हालांकि, कई शोध यह साबित

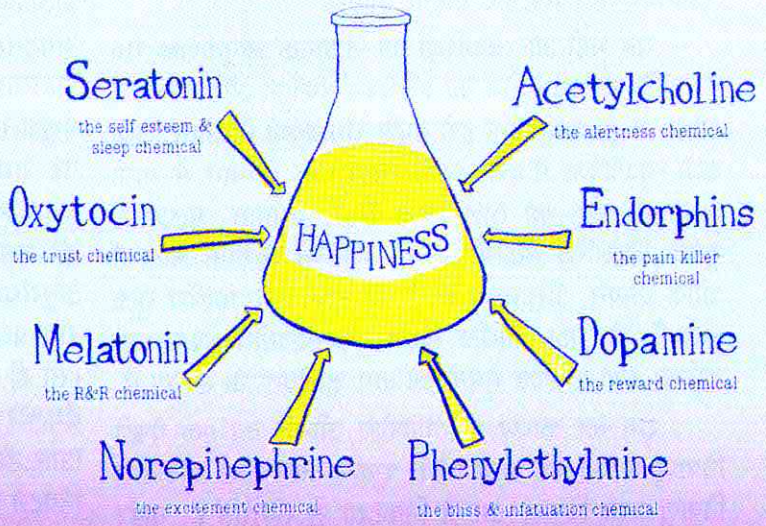

कर चुके हैं कि रोना हमारी मानसिक सेहत के लिए काफी फायदेमंद है.

शोध के मुताबिक, रोने से भावनात्मक संतुलन बरकरार रहता है. जैसे खुशी के वक्त हंसी आती है, वैसे ही मुश्किल वक्त में रोना भी स्वाभाविक क्रिया है. रोने से तनाव अपने आप छूमंतर हो जाता है. साथ ही तनाव के कारण हमारे शरीर में जमा टॉक्सिन रोने के बाद खुद-ब-खुद धुल जाते हैं.रोने से हमारी आंखों की सफाई होती है. आंखों में लंबे वक्त से जमी धूल और कीचड़ अपने आप धुल जाती है. इससे आंखों की नमी बरकरार रहती है. आंसुओं में लाइजोजाइम एंजाइम होता है, जो आंखों के ९० से ९५ प्रतिशत कीटाणुओं को नष्ट कर देता है. रोने के बाद फील गुड हार्मोंस के स्राव से मूड अच्छा हो जाता है. रोने का सबसे बड़ा फायदा है कि इससे हमारे अंदर बुरे वक्त का सामना करने की हिम्मत आती है. इसलिए, टेंशन या परेशानी में गुमसुम रहने से अच्छा है, थोड़ा रो लिया जाए.

आकाश गंगा का नया ग्रह केपलर-१८६

द माइंडअनलीश्ड के मुताबिक नासा के केपलर स्पेस टेलिस्कोप को धरती जैसा ही एक ग्रह एक सितारे के आजू-बाजू मंडराता हुआ दिखा है.

ये ग्रह हमारे आकाशगंगा में ही है. इसका नाम केपलर १८६ एफ दिया गया है. बताया जा रहा है कि केपलर १८६ एफ हमारी धरती से ५०० लाइट इयर्स की दूरी पर है.

जिस जोन में केपलर १८६ एफ को पाया गया है उसका नाम गोल्डीलॉक जोन है. ये एक सितारे के आस-पास का वो क्षेत्र है जिसमें ग्रहों के अस्तित्व में आने लायक चीजें पाई गई हैं. जैसे की एटमॉसफेरिक प्रेशर. इसका मतलब है ये जगहें पानी को

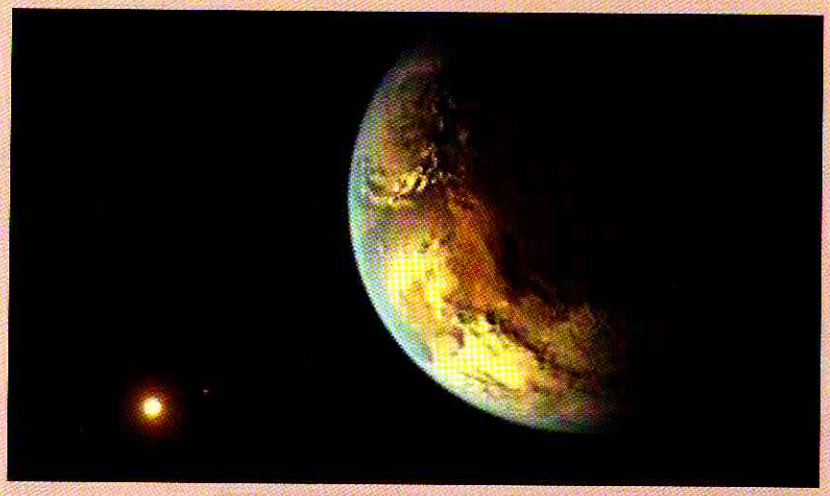

सपोर्ट करने के लायक हैं.

वैज्ञानिकों को कहना है कि केपलर १८६ एफ के अलावा चार और ग्रह केपलर १८६ एफ सिस्टम के चारों तरफ घूम रहे हैं.

जैसे हमारे ग्रह के पास सबसे बड़ा और नजदीकी स्टार खुद सूर्य है, वैसे ही इन ग्रहों के भी नजदीकी ग्रहों का पता चलते ही वहां जिंदगी के पनपने की संभावनाएं तेज हो सकते हैं.

पता चला कि केपलर १८६ एफ का घनत्व और वजन सौरमंडल के सूरज का आधा है. हमारी धरती जितना सूर्य से एनर्जी ले पाती है, केपलर १८६ एफ उसका आधा ही लेने में सक्षम है. केपलर १८६ एफ अपने तारे के आजू-बाजू १३० दिनों में एक बार चक्कर काट लेता है.

संकलन : पूनम, अणुशक्ति नगर

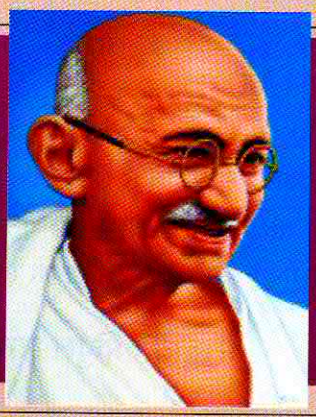

ऐसे जियो जैसे कि तुम कल मरने वाले हो । ऐसे सीखो की तुम हमेशा के लिए जीने वाले हो ।
-- महात्मा गांधी

वैज्ञानिक वर्ग पहेली

1	8	11	17	23	27	31
2	9	12	18		28	32
3		13	19	24		
4	10	14	20		29	33
5				25		
6		15	21		30	
7		16	22	26		

ऊपर से नीचे :

1. काला पक्षी (2)
2. गरीबी में यह भी गीला (3)
6. मेरा मूल्य क्या दे पाओगे (2)
9. भारतीय वैज्ञानिक जिन्होंने भारत को सबल बनाया (6)
10. न्याय प्रिय मुगल बादशाह (4)
11. यह दुनिया (2)
12. दुखी शोकाकुल उर्दू में (2)
13. पानी भरो काम करो (2)
14. दुख शोक से परिपूर्ण उर्दू में (4)
17. ऊपर बायें एक समान यही है मेरी पहचान (2)
19. तुम पिटाई के अभ्यस्त हो (2)
20. काश तेरी झलक दिख जाए (3)
21. शराब का नाम (2)
27. तिलहन यानि जिससे तेल निकले बस यहीं पर हूं (2)
29. मन ठहरता नहीं क्या करें (3)
30. दोनों तरफ से फायदा है (2)
31. पुरानी मुद्रा (2)
32. बलमा हमार मोटरकार लेके आओ रे (2)
33. उर्दू में खोलकर भीतर आओ न (4)

बाएं से दायें :

2. स्वागत है (2)
3. मेरे कुत्ते का नाम (2)
4. कपड़े की पुरानी नाप (2)
5. यस सर आप सही है (2)
6. हमें दुख है मित्र आप बदनाम हैं (2)
7. माझा नवरा यानि हिन्दी में (3)
8. बहुत आलसी है सांप (4)
10. भारतीय मूल के महान वैज्ञानिक (6)
11. यह दुनिया यह महफिल (2)
12. बीज मिट्टी में ....जाता है (2)
15. जोरू जमीन इसी कारण युद्ध होते हैं (2)
16. गोवा के साथ इसका नाम क्यों लेकर हमें दबाते हो (3)
17. अगर मैं वर्ग पहेली जीत गया (2)
18. जबरिया देना ही होगा नहीं तो जमीन जब्त (2)
19. क्या विधायक जी जनता की भी सुनो (4)
21. पहाडी जाति का सर नेम (3)
22. नमक में ढूंढो न (2)
23. आज भी इससे सिंचाई होती है (3)
24. गुणकारी जहरीली औषधि (3)
25. कुछ चलो भी यार (3)
26. आसमान की तरफ देखो (2)
27. चल....निखट्टू (2)
28. मला त्रास देऊ नाही, यही गलत है (2)
29. चन्दामामा दूर के वह भी इतना थोडा (2)
30. ज्वालामुखी क्या फूटा बस गरम....निकला (2)

प्रस्तुति : विपुल लखनवी

डॉ. होमी भाभा का जीवन परिचय

देश आजाद हुआ तो मशहूर वैज्ञानिक डा. होमी जहांगीर भाभा ने दुनिया भर में काम कर रहे भारतीय वैज्ञानिकों से अपील की कि वे भारत लौट आएं. उनकी अपील का असर हुआ और कुछ वैज्ञानिक भारत लौटे भी. इन्हीं में एक थे मैनचेस्टर की इंपीरियल कैमिकल कंपनी में काम करने वाले होमी नौशेरवांजी सेठना. अमेरिका की मिशिगन यूनिवर्सिटी से पोस्ट ग्रेजुएशन करने वाले सेठना में भाभा को काफी संभावनाएं दिखाई दीं. ये दोनों वैज्ञानिक भारत को परमाणु शक्ति संपन्न बनाने के अपने कार्यक्रम में जुट गए.

भारत की परमाणु शक्ति के जनक डॉ होमी जहांगीर भाभा का जन्म 30 अक्टूबर, 1909 में मुम्बई के एक संभ्रात पारसी परिवार में हुआ था. उनके पिता जहांगीर भाभा, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पूर्व छात्र, एक प्रतिष्ठित वकील थे, जिन्होने टाटा उद्यम की सेवा भी की. भाभा की मां मेंहरां पेटिट परिवार की थी. उनके दादा मैसूर राज्य के शिक्षा विभाग में एक अधिकारी थे. वे एक प्रमुख वैज्ञानिक और स्वप्नदृष्टा थे जिन्होंने भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की कल्पना की थी और आज भी उनके द्वारा प्रशस्थ त्रिचरण कार्यक्रम पर भारत आज भी चल रहा है. उन्होंने मुट्ठी भर वैज्ञानिकों की सहायता से मार्च 1944 में नाभिकीय ऊर्जा पर अनुसन्धान आरम्भ किया. उन्होंने नाभिकीय विज्ञान में तब कार्य आरम्भ किया जब अविछिन्न श्रृंखला अभिक्रिया का ज्ञान नहीं के बराबर था और नाभिकीय ऊर्जा से विद्युत उत्पादन की कल्पना को कोई मानने को तैयार नहीं था. उन्हें दुनिया ने 'आर्किटेक्ट ऑफ इंडियन एटॉमिक एनर्जी प्रोग्राम' भी कहा. चित्रकला, संगीत और साहित्य में गहरी रुचि रखनेवाले डॉ भाभा बहुत कम सोते, जिसके कारण डॉ भाभा के मां बाप उनके प्रति बहुत चिंतित रहते थे पर चिकित्सक के अनुसाए उनका सुपर सक्रिय मस्तिष्क और विचारों के निरंतर , तेजी से प्रवाह के कारण वह नहीं सो पाते थे. मात्र 15 साल की उम्र में आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को समझ लिया और सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा उत्तीर्ण की . भाभा ने कैथेड्रल और जॉन तोप हाई स्कूल, एल्फिंस्टन कॉलेज, रॉयल इंस्टीट्यूट, मुंबई में अध्ययन के बाद मैकेनिकल इंजीनियरिंग का ट्राईपोस पास किया. 1930 में एक रिसर्च स्कॉलर के रूप में सैद्धांतिक भौतिकी में अपनी पढ़ाई शुरू की. उनका डब्ल्यू पोएली,एनरिको फर्मी, रदरफोर्ड, डिराक, नील्स बोहर जैसे रह प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के साथ निकट संपर्क रहा.

वर्ष 1937 में यह भाभा ने भौतिक शास्त्री हेटलर के साथ भाभा - हेटलर इलेक्ट्रॉन वर्षा का झरना सिदांत ('Bhabha-Heitler Cascade Theory') प्रस्तुत किया. यह भौतिकी की दुनिया में एक नई दृष्टि लेकर आया है. इस सिद्धांत में ब्रह्मांडीय किरणों में इलेक्ट्रान की बारिश करने की प्रक्रिया को बताते हैं. इस शोध ने भाभा को बहुत प्रसिद्धि दी.

भाभा द्वितीय विश्व युद्ध के समय 1939 में एक छुट्टी के लिए भारत आए और फिर इंग्लैंड के लिए वापस नहीं गये, यही प्रकरण भारत के लिए वास्तव में भाग्यशाली था, जिसका परिणाम यह रहा कि आज भारत एक सम्बल शक्तियुक्त राष्ट्र है.

प्रस्तुति : विपुल सेन

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) RNI. No.:18862/70

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

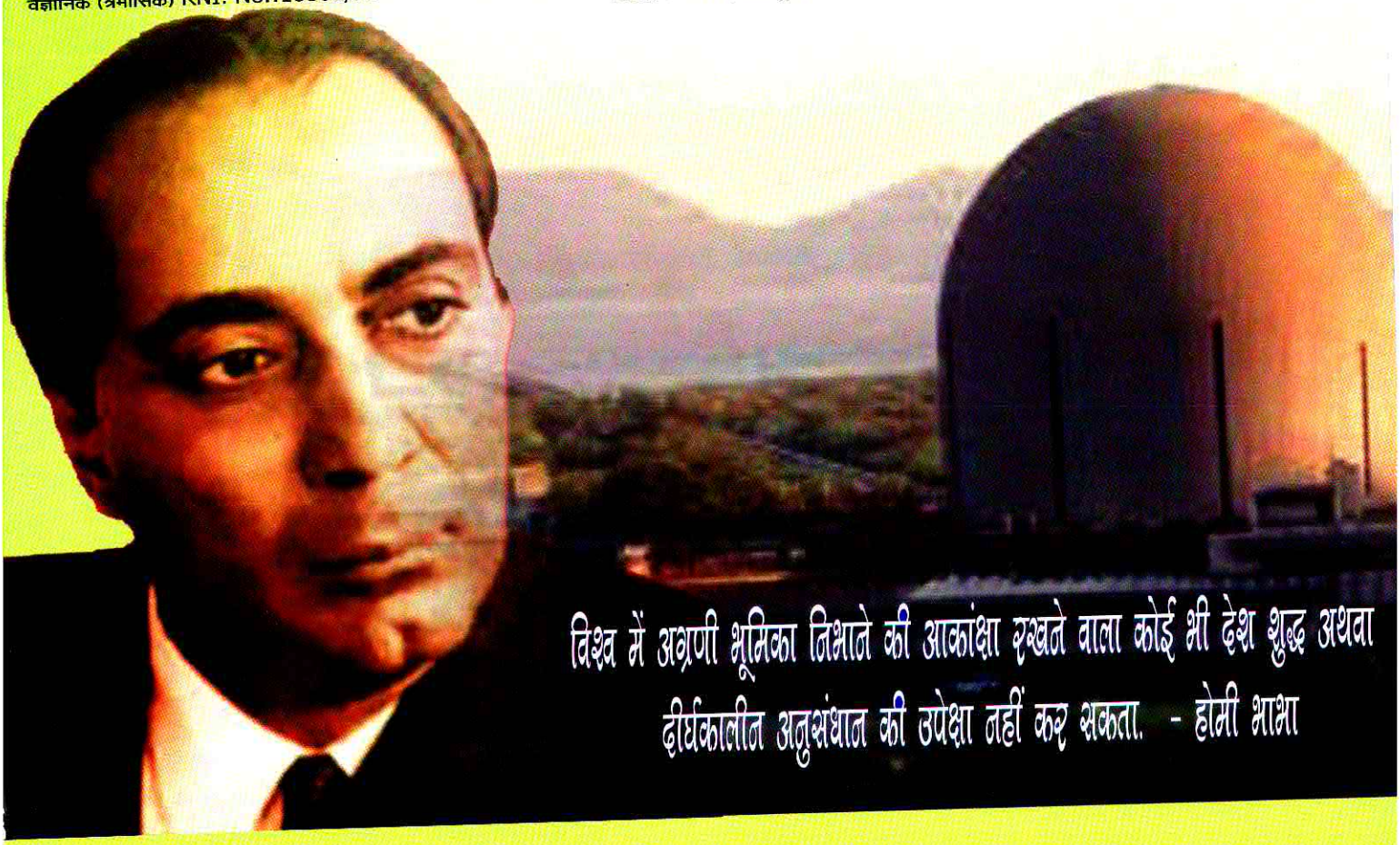

विश्व में अग्रणी भूमिका निभाने की आकांक्षा रखने वाला कोई भी देश शुद्ध अथवा दीर्घकालीन अनुसंधान की उपेक्षा नहीं कर सकता. - होमी भाभा

जन्म	30 अक्टूबर 1909 मुंबई, भारत
मृत्यु	24 जनवरी 1966 मोंट ब्लांक, फ्रांस कारण भारतीय विमान एअर इंडिया 'कंचनजंगा' दुर्घटनाग्रस्त
कार्य - क्षेत्र	भौतिकी व परमाणु वैज्ञानिकी
सम्बन्धित संस्थायें	भारतीय विज्ञान संस्थान टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार
मातृसंस्था	कैथेड्रल और जॉन तोप हाई स्कूल, एल्फिंस्टन कॉलेज, रॉयल इंस्टीट्यूट, मुंबई और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय
मुख्य सलाहकार	पॉल डिराक, रॉल्फ एच फाउलर
प्रसिद्ध शोध कार्य	भाभा स्कैटेरिंग

◆ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ◆ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ◆ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ◆ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए **श्री.प्रमोद वसंत भागवत** द्वारा सम्पादित एवं **श्री विपुल सेन** द्वारा निर्भय पथिक (फोन : 24153784, 32201260) में मुद्रित व प्रकाशित ।